वर्ष : 12 अंक : 9 सितम्बर, 2014 ₹ 10

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

14 सितम्बर : हिन्दी दिवस

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा 4 सितम्बर 2014 को विज्ञान भवन में आयोजित 5वें डॉ. अम्बेडकर स्मारक व्याख्यान के अवसर पर बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित करते हुए राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी।

4 सितम्बर 2014 को डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित डॉ. अम्बेडकर स्मारक व्याख्यान के अवसर पर राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी को पुष्प गुच्छ से स्वागत करते हुए सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री एवं प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री थावरचंद गेहलोत।

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

वर्ष : 12 ★ अंक : 09 ★सितम्बर 2014 ★ कुल पृष्ठ : 60

सम्पादक
सुधीर हिलसायन

सम्पादक मंडल
चन्द्रवली
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
डॉ. प्रभु चौधरी

सम्पादकीय कार्यालय
सामाजिक न्याय संदेश
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
15 **जनपथ, नई दिल्ली**-110001
सम्पादकीय सम्पर्क 011-23320588
सब्सक्रिप्शन सम्पर्क 011-23357625
मोबाईल : 07503210124
फैक्स : 011-23320582
ई.मेल : hilsayans@gmail.com
editorsnsp@gmail.com

वेबसाईट: www.ambedkarfoundation.nic.in
(सामाजिक न्याय संदेश उपर्युक्त वेबसाईट पर उपलब्ध है)

व्यापार व्यवस्थापक
जगदीश प्रसाद

प्रकाशक व मुद्रक **जी.के. द्विवेदी**, निदेशक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार) के लिए इंडिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110064 से मुद्रित तथा 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित व **सुधीर हिलसायन**, सम्पादक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा सम्पादित।

सामाजिक न्याय संदेश में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित लेखों /रचनाओं में दिए गए तथ्य संबंधी विवादों का पूर्ण दायित्व लेखकों /रचनाकारों का है। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय-वस्तु के लिए भी सामाजिक न्याय संदेश उत्तरदायी नहीं है। समस्त कानूनी मामलों का निपटारा केवल दिल्ली/नई दिल्ली के क्षेत्र एवं न्यायालयों के अधीन होगा।

RNI No. : DELHIN/2002/9036

इस अंक में

❖ सम्पादकीय/14 सितम्बर : हिन्दी दिवस	सुधीर हिलसायन	3
❖ गोलमेज सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर		4–9
❖ डॉ. अम्बेडकर स्मृति व्याख्यान डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और 21वीं सदी का भारत	श्री प्रणव मुखर्जी	10–14
❖ दलित आत्मकथाओं का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	अनुरुद्ध सिंह	17–28
❖ आरक्षण एक मुद्दा	रविन्दर कौर	31–33
❖ हिन्दी के प्रति हमारी चेतना	बलराम प्रसाद	34–36
❖ भारतीय संविधान में राजभाषा हिन्दी	डॉ. पूरनचन्द टण्डन	37–41
❖ उपन्यास अंश/अछूत	मुल्क राज आनन्द	42–49
❖ पुस्तक अंश/डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर–जीवन चरित	धनंजय कीर	50–56
❖ कविता/असमय मुरझाई कली	संध्या पेडणेकर	57

ग्राहक सदस्यता शुल्क : वार्षिक ₹ 100, द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250
*डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर **डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन**, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 के नाम भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।*

सम्पादक के नाम पत्र

पत्रिका बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की पुस्तकों का प्रतिरूप

सम्पादक महोदय,

'सामाजिक न्याय सन्देश' पत्रिका पढ़ने को मिली। पत्रिका में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के महत्त्वपूर्ण विचारों को उनकी पुस्तकों से संकलन कर जो आप प्रकाशित कर रहे हैं उससे बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की पुस्तकों को पढ़ने की ओर हमारी रूचि बढ़ी है। लगता है हमारी ही तरह अन्य भाई-बहन भी इससे और आकर्षित होंगे और महापुरूषों की पुस्तकों को पढ़कर जीवन में लाभ उठाएगें। मेरी इच्छा है कि आपके द्वारा प्रकाशित यह पत्रिका पूरे देश के दलित-पिछड़े समाज के लोग अवश्य पढ़ें। जब हम बहुत सारे अख़बार व पत्र-पत्रिकाएं पढ़ते हैं तो महापुरूषों के विचारों वाली यह पत्रिका भी अवश्य पढ़ें। इससे जानकारी के साथ-साथ बौद्धिक ज्ञान भी बढ़ता है। पत्रिका के अच्छे प्रकाशन के लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

अनुप्रिया शेखर,
गोमती नगर, लखनऊ (उ.प्र.)

महापुरूषों के संदेशों से अच्छा करने की प्रेरणा मिलती है

सम्पादक महोदय,

'सामाजिक न्याय सन्देश' पत्रिका को मैंने पढ़ा। इस पत्रिका को पढ़ने से मुझे एहसास हुआ कि हमारे महापुरूषों ने हमारे लिए कितना कठिन संघर्ष किया, जिसकी बदौलत आज हमें जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर मिल रहा है। एक बात तो सत्य है कि बिना संघर्ष किये हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। हमें अपने महापुरूषों के संघर्षों को कभी नहीं भूलना चाहिए। इसलिए पत्रिका के पाठक साथियों से भी यही कहूंगी कि आप स्वयं के साथ-साथ अन्य साथियों में भी ऐसी सामग्री पढ़ने में रूचि बढ़ाएं। इससे जानकारी भी मिलती है और नया कुछ करने की प्रेरणा भी मिलती है। जब तक हमें प्रेरणा नहीं मिलेगी तब तक हमारे अन्दर कुछ अच्छा करने की भावना भी जाग्रत नहीं होगी। इसलिए मैं सम्पादक महोदय जी की बहुत-बहुत आभारी हूं कि आप महापुरूषों के संदेशों को पत्रिका के माध्यम से जन-जन तक पहुंचा रहे हैं।

मेघा,
नोएडा, गौतमबुद्धनगर (उ.प्र.)

पत्रिका के सकारात्मक प्रयास जागृति एवं जानकारी के लिए सफल

सम्पादक महोदय,

पत्रिका द्वारा प्रकाशित अप्रैल-2014 का अंक प्राप्त हुआ। आपने इस अंक को विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया, और इसमें हर लेख के साथ बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के खास मौके के फोटो भी लगाये हैं, इससे इन लेखों की गंभीरता भी बढ़ गई है। कृपया आप इसी तरह से कोशिश करें कि लेख से सम्बन्धित फोटो पत्रिका में छपें।

पत्रिका में एक और ख़ास बात यह देखने को मिली कि प्रतिष्ठान से जुड़े सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार की दलितों-पिछड़ों के उत्थान हेतु चलाई जा रही योजनाओं को हर अंक में किसी न किसी नयी योजना के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है, जिनकी जानकारी भी सम्बन्धित लोगों को मिलना लाभकारी हैं। पत्रिका का सही प्रकाशन समाज को सही दिशा देने में हितकर सिद्ध हो रहा है। आपके सकारात्मक प्रयास समाज को जागरूक बनाने में सफल हैं। इसके लिए हम आपके आभारी हैं।

मुकेश
पांडव नगर, नई दिल्ली

सम्पादकीय

14 सितम्बर : हिन्दी दिवस

संविधान सभा में 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया था। तब से इस दिन को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है। 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू होने के पश्चात् उसमें किए गए भाषायी प्रावधान (अनुच्छेद 120, 210 तथा 343 से 351) लागू हुए। 1952 में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा हिन्दी भाषा का प्रशिक्षण ऐच्छिक तौर पर शुरू किया गया। दिनांक 5 सितम्बर 1967 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रीय हिन्दी समिति का गठन किया गया। यह समिति सरकार की राजभाषा नीति के संबंध में महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश देने वाली सर्वोच्च समिति है। इस समिति में प्रधानमंत्री जी के अलावा केन्द्रीय मंत्री कुछ राज्यों के मुख्यमंत्री, सांसद तथा हिन्दी एवम् अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वान सदस्य के रूप में शामिल किए जाते हैं।

संसद के दोनों सदनों राज्यसभा व लोकसभा द्वारा राजभाषा संकल्प पारित किया गया जिसमें हिन्दी के राजकीय प्रयोजनों हेतु उत्तरोत्तर प्रयोग के लिए अधिक गहन और व्यापक कार्यक्रम तैयार करने, प्रगति की समीक्षा के लिए वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट तैयार करने, हिन्दी के साथ-साथ 8वीं अनुसूची की अन्य भाषाओं के समन्वित विकास के लिए कार्यक्रम तैयार करने, त्रिभाषा सूत्र को अपनाये जाने, संघ लोक सेवाओं के लिए भर्ती के समय हिन्दी व अंग्रेजी में से किसी एक के ज्ञान की आवश्यकता अपेक्षित होने तथा संघ लोक सेवा आयोग द्वारा उचित समय पर परीक्षा के लिए संविधान की 8वीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की बात कही गई है। यह संकल्प 18 अगस्त 1968 को प्रकाशित हुआ।

भारतीय संविधान के निर्माता बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने भाषा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा था **''एक भाषा जनता को एक सूत्र में बांध सकती है। दो भाषाएं निश्चय ही जनता में फूट डाल देंगी। यह एक अटल नियम है। भाषा, संस्कृति की संजीवनी होती है। चूंकि भारतवासी एकता चाहते हैं और एक समान संस्कृति विकसित करने के इच्छुक हैं, इसलिए सभी भारतीयों का यह कर्तव्य है कि वे हिन्दी को अपनी भाषा के रूप में अपनाएं।''**

बाबासाहेब मानते थे केन्द्र और प्रांत की कार्यालयीन भाषा एक ही हो। भाषावार प्रांतों के निर्माण में वह उसे कोई खतरा नहीं मानते थे। खतरा तब होगा, जब भाषावार प्रांत बनाए जाएं और साथ-साथ प्रत्येक प्रांतीय भाषा को भी वहां की राजभाषा बना दिया जाए। प्रांतीय भाषाओं को राजभाषाएं बना देने से प्रांतीय राष्ट्रकर्ताओं के विकास का रास्ता साफ हो जाएगा, क्योंकि प्रांतीय भाषाओं के राजभाषाएं बन जाने का परिणाम यह होगा कि प्रांतीय संस्कृतियां अलग-थलग पड़ जाएंगी, तब उनका स्वरूप अलग से झलकने लगेगा और ऐसा होने पर उनमें कठोरता और ठोस हो जाएगी। ऐसा होने देना विनाशकारी होगा। इसका तात्पर्य प्रांतों को स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में विकसित होने देने का न्यौता देना होगा- इसका तात्पर्य-हर मामले में स्वतंत्र या अलग-अलग और इस प्रकार एकीकृत भारत के सर्वनाश का रास्ता खुल जाएगा।

भाषा एवं राष्ट्र के प्रति बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की उपर्युक्त सोच यह परिलक्षित कर रहा है कि राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के प्रति वे कितने सजग थे। वर्तमान सरकार में हिन्दी में काम-काज का चलन बढ़ रहा है यह हिन्दी के विकास के लिए शुभ संकेत है।

आएं 14 सितम्बर हिन्दी दिवस पर हम हिन्दी के दायरे को और बढ़ाने का संकल्प लें।

(सुधीर हिलसायन)

पुस्तक अंशः **बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड-5**

गोलमेज सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर

संघीय संरचना समिति

कल आपने जो विचार व्यक्त किए उनके अनुसार न्यायिक शक्ति का विस्तार ऐसे मामलों के लिए किया जाएगा, जो संघ और उसकी विभिन्न इकाइयों के बीच होंगे, राज्य बनाम राज्य प्रांत बनाम राज्य, भारतीय कॉमनवेल्थ बनाम राज्य या प्रांत होंगे। मैं यह नहीं जानता कि यहां 'राज्य' शब्द का प्रयोग किसी निगमित निकाय के लिए या न्यासी, संरक्षक या नागरिकों के प्रतिनिधि के रूप में हुआ है। इसके अलावा, मेरा ऐसा विचार है कि संघीय न्याय-व्यवस्था को ऐसे मामलों के लिए भी प्रावधान करना चाहिए, जो किसी इकाई और दूसरी इकाई के नागरिक के बीच हों। एक उदाहरण लीजिए, कल्पना कीजिए कि कोई भारतीय राज्य, जो संघ की एक इकाई बन जाती है, कुछ रकम कल्पित ऋण बोर्ड से खुला बाजार में ऋण के रूप में लेती है। यह भी कल्पना कीजिए कि बंबई प्रांत में रहने वाला कोई नागरिक उस ऋण के लिए अंशदान करता है और कल्पना कीजिए कि प्रांतीय सरकार ऋण अदा नहीं कर पाती। इसका समाधान क्या है? इस योजना में मुझे संघीय न्याय-व्यवस्था के लिए ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिला है जिससे कि कोई उचित कार्रवाई की जा सके। एक दूसरा उदाहरण लीजिए, ब्रिटिश सरकार के अधीन बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं, जिन्हें सौंपे गए क्षेत्र कहा जाता है। इन क्षेत्रों की सरकारें यह मांग कर रही हैं कि ये सौपे गए क्षेत्र, उन्हें वापस लौटाए जाएं या अगर ये क्षेत्र वापस नहीं किए जाते हैं तो उन्हें उसके लिए हर्जाना दिया जाए। कल्पना कीजिए कि उक्त सौंपे गए किसी क्षेत्र में ब्रिटिश सरकार ने किसी व्यक्ति को कुछ भूमि दी है और कल्पना कीजिए कि उक्त क्षेत्र को भारतीय राज्य को लौटाए जाने पर वहां का शासक भी उस भूमि को किसी दूसरे को दे देता है। अब यह ऐसा मामला है जहां एक ही चीज दो भिन्न-भिन्न प्राधिकारियों के द्वारा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को मंजूर की जाती है। इस तरह के विवाद के निर्णय के लिए क्या व्यवस्था है? क्या संघीय न्यायालय इस तरह के मामलों की सुनवाई करेगा या नहीं? एक और उदाहरण लीजिए, कोई दो व्यक्तियों के बीच कोई कानूनी विवाद हैं ये व्यक्ति संघ की भिन्न-भिन्न इकाइयों में रहते हैं इनके मामले की सुनवाई किस अदालत में होगी? ये ऐसे कुछ मामले हैं जिनके बारे में मैंने आपके अभिभाषण में कोई व्यवस्था नहीं देखी है, जो आपने कल

हम लोगों के सम्मुख दिया था।

भारत में संघीय न्यायालय के लिए आपकी योजना में, जो विधान प्रस्तावित किया गया है, उसकी तुलना ऑस्ट्रेलिया और अमरीका के संघीय न्यायालयों के कार्यक्षेत्र के साथ करने के बाद मुझे लगता है कि इस योजना में संघीय सरकार की जरूरतों को पूरा करने के लिए यथेष्ट प्रावधान नहीं किया गया है। आस्ट्रेलिया में धारा 75 के अधीन वहां के उच्च न्यायालय के कार्यक्षेत्र में वे सभी मामले आते हैं, (1) जो किसी भी संधि से उत्पन्न होंगे, (2) जो दूसरे देशों के काउंसिलों या प्रतिनिधियों को प्रभावित करते हैं, (3) जिसमें कामनवेल्थ या अभियोग करने वाला या जिस पर कामनवेल्थ की ओर से अभियोग किया गया है, एक पक्षकार है, (4) जो राज्यों

और दूसरे भिन्न-भिन्न राज्यों में रहने वाले व्यक्तियों के बीच या जो एक राज्य और दूसरे राज्य में रहने वाले व्यक्तियां के बीच हो, और (5) जिसमें कामनवेल्थ के किसी अधिकारी के विरूद्ध परमादेश या निषेधाज्ञा की याचिका दायर की गई है। धारा 76 के अनुसार, (1) जो संविधान के अधीन या उसके निर्वाचन से संबंधित, (2) संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के अधीन उत्पन्न, (3) नौ अधिकरण या समुद्री क्षेत्र विषयक, और (4) विभिन्न राज्यों के कानूनों के अधीन उठाए गए समान विषयों से संबंधित सभी मामले आते हैं। अमरीका के संविधान के अनुच्छेद III (2) के अधीन अमरीका की न्यायिक शक्ति के अधीन (1) संविधान के अधीन कानून और पूरक न्याय, अमरीका के कानून, इनके तहत की गई या की जाने वाली संधियों से संबंधित सभी मामले, (2) राजदूतों और अन्य सार्वजनिक मंत्रियों और कांउसिलों को प्रभावित करने वाले सभी मामले, (3) नौ अधिकरण और समुद्री क्षेत्र के सभी मामले, (4) सभी विवाद जिनमें अमरीका एक पक्ष का होगा, (5) दो या इससे अधिक राज्यों के बीच विवाद, (6) किसी राज्य या किसी दूसरे राज्य के नागरिक के बीच के विवाद (जो हालांकि बाद में संविधान के 11 वें संशोधन के द्वारा रद्द किया जा चुका है), (7) विभिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच के विवाद, (8) विभिन्न राज्यों की कानूनी स्वीकृति के अधीन भूमि के बारे में एक ही राज्य के नागरिकों के दावे संबंधी विवाद, और (9) एक राज्य या उसके नागरिकों और विदेशी राज्यों के नागरिकों या जनता के बीच के विवाद आते हैं। इसलिए मेरा निवेदन है कि अगर इस संघीय न्यायालय को यथा-तथ्य रूप ये संघीय न्यायालय बनाना है, अर्थात यदि उसके अधीन संघ की इकाइयों के बीच या विभिन्न इकाइयों के नागरिकों के बीच विवाद के सभी मामले शामिल किए जाते हैं, तब इस सूची को संशोधित किया जाना चाहिए और इसे संघीय कार्यक्षेत्र के अनुरूप बनाया जाना चाहिए, जैसा कि आस्ट्रेलिया या अमरीका आदि देशों में शामिल किया गया है।

हालांकि भारत एक संघीय देश बनने जा रहा है, तो भी भारत अपने संघीय न्यायालय के कार्यक्षेत्र की सीमा को उतनी सीमा तक व्यापक बनाकर संतुष्ट नहीं रह सकता, जो स्थिति ऑस्ट्रेलिया और अमरीका में संघीय न्यायालयों की इस समय है। भारत के संबंध में कुछ विशेष परिस्थितियां हैं, जो इन देशों में नहीं हैं। इसलिए मेरा निवेदन है कि भारत में संघीय न्यायालय का संघीय कार्यक्षेत्र न केवल ऑस्ट्रेलिया और अमरीका के संघीय न्यायालयों के संघीय कार्यक्षेत्रों के अनुरूप होना चाहिए, बल्कि मौलिक अधिकारों और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के संबंध में भी इसका कार्यक्षेत्र संघीय होना चाहिए।

अध्यक्ष महोदय! अगला विषय जिस पर मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूं, वह यह है कि हालांकि भारत एक संघीय देश बनने जा रहा है, तो भी भारत अपने संघीय न्यायालय के कार्यक्षेत्र की सीमा को उतनी सीमा तक व्यापक बनाकर संतुष्ट नहीं रह सकता, जो स्थिति आस्ट्रेलिया और अमरीका में संघीय न्यायालयों की इस समय है। भारत के संबंध में कुछ विशेष परिस्थितियां हैं, जो इन देशों में नहीं हैं। इसलिए मेरा निवेदन है कि भारत में संघीय न्यायालय का संघीय कार्यक्षेत्र न केवल आस्ट्रेलिया और अमरीका के संघीय न्यायालयों के संघीय कार्यक्षेत्रों के अनुरूप होना चाहिए, बल्कि मौलिक अधिकारों और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के संबंध में भी इसका कार्यक्षेत्र संघीय होना चाहिए।

अध्यक्ष: क्या आप अमरीका के संविधान में मौलिक अधिकारों से संबंधित खंड के बारें में हमें बताएंगे?

डॉ॰ अम्बेडकर : जी हां, मैं बताऊंगा।

अध्यक्ष : अगर आप कुछ अन्यथा न समझें, तो हमें केवल यह बता दें कि यह कहां मिलेगा? मैं इसे खूब जानता हूं, लेकिन इस समय मैं इसे ढूंढ नहीं पा रहा हूं।

डॉ॰ अम्बेडकर : क्षमा करें, अभी यह मेरे पास नहीं है।

अध्यक्ष : मेरे ध्यान में वह खंड आ रहा है, जो विभिन्न राज्यों में स्वतंत्र नागरिकों के विशेषाधिकारों और उनकी स्वतंत्रता और हर प्रांत और राज्य के नागरिकों को आने-जाने की स्वतंत्रता या कुछ ऐसी ही बात से शुरू होता है। फिर भी हम अब अपना समय नष्ट नहीं करेंगे, क्योंकि इस समय वह मुझे नहीं मिल रहा है। मैं अनुच्छेद IV की धारा 2 के बारे में सोच रहा था।

डॉ॰ अम्बेडकर : मेरा निवेदन है कि हम चाहे जिस रीति से मूल अधिकारों की परिभाषा करें या चाहे जिस रीति से हम अल्पसंख्यकों के अधिकारों की परिभाषा करें, महत्वपूर्ण समस्या यह है कि इनकी

उचित सुरक्षा की जाए। मेरे कारण ये हैं – हम जैसा संघीय संविधान बना रहे हैं, उन सभी विरोधों के साथ जो हम कर रहे हैं, एक संघीय संविधान नहीं बन रहा है हमारा संघ, ब्रिटिश भारत, जिसमें सभी लोकप्रिय और प्रतिनिधि संस्थाएं हैं और भारतीय राज्यों, जहां कोई भी लोकप्रिय और प्रतिनिधि संस्थाएं नहीं हैं, को मिलाकर बन रहा है। मैं सिर्फ कल्पना कर रहा हूं। संभवत: इसके उल्टे परिणाम होंगे और अगर ऐसा हुआ तो कोई भी मुझसे ज्यादा खुश नहीं होगा। लेकिन हमारे सामने ऐसी ही स्थिति होगी, अर्थात यह संघीय लोकतंत्र और अधिनायकवाद के बीच होगा। और मैं कहता हूं कि हम ब्रिटिश भारत में राजनीतिक बहुसंख्यकों की सरकार न बनाकर ऐसी सरकार बना रहे होंगे, जो मुख्यत: सांप्रदायिक बहुसंख्यकों की होगी। इसलिए मेरा मानना है कि मूल अधिकारों की सुरक्षा का प्रश्न और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा का प्रश्न भारत में कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है, जितना कि वह किसी और संविधान में हो सकता है और मूल अधिकारों को, चाहे वे जो भी हों, और अल्पसंख्यकों के अधिकारों को, ये भी चाहे जो भी हों, सुरक्षित रखना परम कर्तव्य बन जाता है। इसे पूरा करने के लिए मुझे जो सबसे अच्छा उपाय दीखता है, वह यह है कि हम संघीय न्यायालय को ऐसा कार्यक्षेत्र प्रदान करें कि वह इनसे संबंद्ध सभी मामलों की सुनवाई कर सके। यह मेरा निवेदन है। मूल अधिकारों या अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान करने से संबंधित प्रश्न, चाहे जहां भी उठें, चाहे ब्रिटिश भारत में या भारतीय राज्यों में, संघीय न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र में होने चाहिए, जिससे वह उनकी सुनवाई कर सके।

अध्यक्ष: क्या आप वाणिज्यक भेदभाव के मामले भी शामिल करना चाहेंगे?

डॉ॰ अम्बेडकर : जी हां, अगर हम सभी इस बात पर सहमत हों कि यह एक मूल अधिकार ही है कि किसी भी प्रकार का वाणिज्यक भेदभाव नहीं होगा, तब इसे संघीय न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र में रखा जाना चाहिए। संघीय न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के बारे में बस इतना ही कहना है।

मैं जिस अगले विषय पर कहना चाहता हूं, वह संघीय न्यायालय के निर्णयों को कार्यान्वित करने के बारे में हैं अध्यक्ष महोदय! आपने जो टिप्पणी कृपापूर्वक परिचालित की है, उसमें संघीय न्यायालय के निर्णयों को कार्यान्वित किए जाने के बारे में कुछ भी कानूनी उपाय नहीं सुझाए गए हैं। मैं समझता हूं कि यह प्रश्न विभिन्न राज्यों और विभिन्न प्रांतों पर छोड़ा जा रहा है और आप शायद यह संकेत करना चाहते हैं कि हमें प्रांतों या राज्यों की सदाशयता पर अविश्वास नहीं करना चाहिए तथा हमें यह मान लेना चाहिए कि वे संघीय न्यायालय के निर्णयों का निष्ठापूर्वक पालन करेंगे और उन्हें लागू करेंगे। अध्यक्ष महोदय! मैं सोचता हूं कि हमें इस आदर्श का अनुसरण करना चाहिए, जो हमें जॉन स्टूअर्ट मिल ने बताया है कि अगर सभी व्यक्ति अच्छे होते, तब कानूनों को बनाने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। लेकिन चूंकि हम जानते हैं कि कुछ व्यक्ति खराब हैं, इसलिए हमें कानून बनाने पड़ते हैं। इसलिए मेरा विचार है कि हमें यह मामला अधर में नहीं छोड़ देना चाहिए। मेरा यह मत अमरीका में संघीय न्यायालय के अनुभव के कारण दृढ़ हो गया हैं। मैं समिति का ध्यान सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के कार्यान्वयन के इतिहास की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। मैं सबसे पहले आपका ध्यान चिशोम बनाम जार्जिया वाले मामले की ओर आकृष्ट कर रहा हूं, जिसका निर्णय 1793 में हुआ था। संघीय न्यायालय ने अपने अधिकार-क्षेत्र के अनुसार जो उस समय उसे मिले हुए थे, कुछ ऋण जार्जिया नाम के राज्य से वसूल करने के लिए चिशोम के पक्ष में निर्णय दिया। लेकिन जैसा कि इतिहास से पता चलता है, जार्जिया राज्य सर्वोच्च न्यायालय के विरोध में उठ खड़ा हुआ और उसने इस निर्णय को इसलिए मानने से अस्वीकार कर दिया कि यह प्रभुसत्तासंपन्न राज्य के लिए एक चुनौती स्वरूप है और तब अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अधर में लटका रहा, यह कार्यान्वित नहीं हो सका। यह मामला इतना तूल पकड़ गया कि जार्जिया राज्य के इस रवैए के कारण 11 वां संशोधन हुआ। इस संशोधन के फलस्वरूप अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय को एक राज्य और दूसरे राज्य के नागरिकों के बीच के विवाद के बारे में जो अधिकार

अध्यक्ष महोदय! मैं सोचता हूं कि हमें इस आदर्श का अनुसरण करना चाहिए, जो हमें जॉन स्टूअर्ट मिल ने बताया है कि अगर सभी व्यक्ति अच्छे होते, तब कानूनों को बनाने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। लेकिन चूंकि हम जानते हैं कि कुछ व्यक्ति खराब हैं, इसलिए हमें कानून बनाने पड़ते हैं। इसलिए मेरा विचार है कि हमें यह मामला अधर में नहीं छोड़ देना चाहिए।

दिए गए थे, वे वापस ले लिए गए। ऐसा ही एक अन्य उदाहरण वर्जीनिया बनाम पश्चिमी वर्जीनिया का है। युद्ध के बाद वर्जीनिया का पुराना राज्य दो भागों में बांट दिया गया, वर्जीनिया और पश्चिमी वर्जीनिया। ऐसा 1861 में हुआ और इस समझौते के अंग के रूप में पश्चिमी वर्जीनिया पहली जनवरी 1861 में पहले पुराने राज्य द्वारा अदा किए गए सार्वजनिक ऋण का एक उचित अंश चुकाने पर राजी हुआ। इस दायित्व की पुनः पुष्टि पश्चिमी वर्जीनिया के संविधान के 8 वें अनुच्छेद में की गई। वर्जीनिया ने यथाशक्ति मैत्रीपूर्ण रीति से पश्चिमी वर्जीनिया को इस रकम का भुगतान करने के लिए कहा, लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकला। 1906 में वर्जीनिया यह मामला अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय में ले गया। पश्चिमी वर्जीनिया ने इस मामले में सबसे ज्यादा अड़ंगे डाले। वह सबसे पहले 1906 से 1911 तक सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार को स्वीकार करने से मना करता रहा। लेकिन जब सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय किया कि यह उसके अधिकार-क्षेत्र में आता है, तब सर्वोच्च न्यायालय ने सारे खातों की जांच करने और इस बारे में एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए एक न्यायाधीश नियुक्त किया। रिपोर्ट तैयार की गई लेकिन तब पश्चिमी वर्जीनिया ने इस रिपोर्ट को चुनौती देते हुए तीन वर्ष बिता दिए। इसके बाद उसके द्वारा यह मामला उसकी विधान सभा में यह विचार करने के लिए ले जाया गया कि क्या उक्त दायित्व स्वीकार किया जाए। यह मामला 1913 तक चला। इसके बाद उसने रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद उस पर अपना पूरक लिखित उत्तर देने के लिए समय मांगा। आपत्ति रद्द की गई। जब अड़चन डालने के सभी उपाय निष्फल हो गए, तब 1915 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपना निर्णय दिया। चार वर्षों तक पश्चिमी वर्जीनिया उस निर्णय पर विचार करने के लिए मना करता रहा और 1919 में ही उसे ऋण अदा करने के लिए राजी किया जा सका।

श्री जिन्ना : यह मानते हुए कि ऐसी दिक्कतें तो आती हैं, आप क्या सुझाव दे रहे हैं?

डॉ॰ अम्बेडकर : मेरा सुझाव यह है कि इस विषय पर मेरी बहुत ही कटु प्रतिक्रिया है। मेरा यह कहना है कि आगे बहुत वर्षों तक संप्रदायवाद और प्रांतीयतावाद रहेगा। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि संप्रदायवाद के इस क्षुब्ध वातावरण में सर्वोच्च न्यायालय या संघीय न्यायालय – इसे आप जो भी नाम दें – के निर्णयों का उल्लंघन किए जाने की संभावना नहीं। अल्पसंख्यकों के बारें में बोलने वाले सदस्य के रूप में, अल्पसंख्यकों के लिए जिनके पास इस समय कोई अधिकार नहीं है और जो अधिकार मांगते हैं तथा जिनका हर जगह विरोध होता है, बोलने वाले सदस्य के रूप में, मैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि कोई भी ऐसी प्रांतीय सरकार जिसे परिषद में सांप्रदायिक बहुमत का समर्थन प्राप्त है, उन निर्णयों और फैसलों को लागू करने के लिए सहमत होगी, जो उसके अपने हितों के अनुरूप नहीं होंगे। मेरा यही दृष्टिकोण है। मैं इसे एक बहुत ही गंभीर मामला समझता हूं। इसलिए, अध्यक्ष महोदय! मैं यह सुझाव देना/चाहता हूं कि हमें संविधान में यह प्रावधान करना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालय के जो भी निर्णय और फैसले होंगे, वे प्रभावी होंगे। मेरा सुझाव है कि हमें उन प्रावधानों का अनुसरण करना और उन प्रावधानों को संविधान में अपना लेना चाहिए, जो आस्ट्रेलिया के संविधान में दिए हुए हैं। सबसे पहले, आस्ट्रेलियाई संविधान की धारा 118 और 51, पैराग्राफ 25, में यह प्रावधान है कि सभी कानूनों में विश्वास और निष्ठा होगी। यह कोई नई बात नहीं है। यह अमरीका के संविधान में भी मिलता है। जहां तक निर्णयों को निष्पादित करने का प्रश्न है, आस्ट्रेलियाई संविधान के पैराग्राफ 34 में संघीय विधान-मंडल को ऐसे सभी मामलों के बारे में कानून बनाने का अधिकार दिया गया है, जो उसको दिए गए अधिकारों के पूरक हैं। आस्ट्रेलियाई संविधान में केंद्रीय सरकार को निर्णय और फैसलों को कार्यान्वित कराने के लिए कुछ विशेष अधिकार दिए गए हैं। सबसे पहले धारा 51, पैराग्राफ 24, लीजिए। इसमें अंतर्राज्यीय सेवा और निर्णयों के कार्यान्वयन के लिए प्रावधान

अल्पसंख्यकों के बारे में बोलने वाले सदस्य के रूप में, अल्पसंख्यकों के लिए जिनके पास इस समय कोई अधिकार नहीं है और जो अधिकार मांगते हैं तथा जिनका हर जगह विरोध होता है, बोलने वाले सदस्य के रूप में, मैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि कोई भी ऐसी प्रांतीय सरकार जिसे परिषद् में सांप्रदायिक बहुमत का समर्थन प्राप्त है, उन निर्णयों और फैसलों को लागू करने के लिए सहमत होगी, जो उसके अपने हितों के अनुरूप नहीं होंगे।

किया गया है। इसका कारण यह है कि सारे कॉमनवेल्थ में राज्यों के बीच दीवानी और फौजदारी मुकदमों की सुनवाई और निर्णय एक ही प्रक्रिया के अधीन है। फिर आप आस्ट्रेलियाई संविधान की धारा 78 लीजिए–

अध्यक्ष : 'संसद न्यायिक शक्ति की सीमा में आने वाले मामलों के बारे में कॉमनवेल्थ या किसी भी राज्य के खिलाफ सुनवाई करने और उस पर निर्णय के अधिकार देने के लिए कानून बना सकती है।'

डॉ॰ अम्बेडकर : जी हां, यह एक बात है। महोदय! जैसा कि आप जानते हैं, आस्ट्रेलिया में संघीय विधान-मंडल ने न्याय-व्यवस्था अधिनियम 1903, भाग 9, के द्वारा इस बात के लिए निश्चित प्रावधान दिया है कि राज्यों के विरूद्ध किस प्रकार निर्णयों और फैसलों को कार्यान्वित किया जाएगा। फिर, आप आस्ट्रेलियाई संविधान की धारा 120 देखें –

प्रत्येक राज्य उन व्यक्तियों को अपनी-अपनी जेलों में नजरबंद करने के लिए, जो कामनवेल्थ के कानूनों के अधीन अपराध के जुर्म में अभियुक्त या दोषी सिद्ध होंगे और उन व्यक्तियों को दंडित करने के लिए व्यवस्था करेगा, जो अपराधों के लिए दोषी सिद्ध होंगे। इसलिए मैं निवेदन करता हूं कि संघीय संविधान को कुछ विशिष्ट अधिकार दिए जाएं, जिससे वह संघीय न्यायालय के निर्णयों को लागू करा सके।

अध्यक्ष: आपके विचार से किस प्रकार के अधिकार दिए जाने चाहिए?

डॉ॰ अम्बेडकर : वे लोग क्या करेंगे, यह मैं नहीं जानता? लेकिन मेरा निवेदन है कि इस मामले को इस प्रकार अधर में छोड़ना नहीं चाहिए। अध्यक्ष महोदय! मैं आपको कुछ उद्धरणों से यह बताना चाह रहा था कि अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय सर्वथा व्यर्थ रहे हैं, जिसका कारण यह था कि उक्त न्यायालय को हमेशा इस बात की शंका रहती थी, कि उसके निर्णयों को कार्यान्वित न किया जाकर उनकी अवमावना की जा सकती है। उदाहरण के लिए एक मामले में, जो ओहियो राज्य के एक गवर्नर के बारे में है, कोई एक भागा हुआ अपराधी, जो ओहिया राज्य में आ गया है, वह गवर्नर के द्वारा सौंप दिया जाएगा। गवर्नर ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। तब केन्ट राज्य ने परमादेश के लिए याचिका प्रस्तुत की। न्यायालय ने इसके उत्तर में कहा: 'संविधान ने हमें अपने आदेश को कार्यान्वित कराने का अधिकार नहीं दिया है, इसलिए हम परमादेश नहीं देंगे।' यह ऐसा ही हुआ, हालांकि उक्त न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि गवर्नर उस व्यक्ति को सौंपने के लिए प्रतिबद्ध है। मैं ऐसे सैंकड़ों मामले उद्धृत कर सकता हूं, जिनमें अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने किसी भी प्रकार की राहत देना सिर्फ इसलिए अस्वीकार कर दिया कि उसे यह शंका घेरे हुए थी कि उसके निर्णयों को कार्यान्वित नहीं किया जाएगा। जब तक हमारे पास इस संबंध में किसी प्रकार का कोई प्रावधान नहीं होगा, मैं नहीं समझता कि स्थिति निरापद रहेगी।

अध्यक्ष महोदय! मैं आपको कुछ उद्धरणों से यह बताना चाह रहा था कि अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय सर्वथा व्यर्थ रहे हैं, जिसका कारण यह था कि उक्त न्यायालय को हमेशा इस बात की शंका रहती थी, कि उसके निर्णयों को कार्यान्वित न किया जाकर उनकी अवमावना की जा सकती है।

अध्यक्ष: किस प्रकार का कानून? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि, उदाहरण के तौर पर, अगर कोई निर्णय बंगाल के खिलाफ दिया जाता है तब आप किसी बेलिफ (कारिन्दे) को बंगाल में भेज देंगे?

डॉ॰ अम्बेडकर : मैं धारा 78 में जो कुछ पाता हूं, उसके आधार पर मेरा आशय यह है कि दीवानी डिग्री के मामले में वित्त मंत्री (ट्रेजरार) या जो कोष या ट्रेजरी का इंचार्ज है, वह भुगतान करने लिए प्रतिबद्ध है।

अध्यक्ष: अगर वह ऐसा नहीं करता तब क्या होगा?

डॉ॰ अम्बेडकर : मेरा विचार है कि न्यायालय उसे अवमानना करने के अपराध में पेश होने के लिए कहेगा।

माननीय मानेकजी दादाभाई: उस पर मुकदमा कहां चलाया जाएगा?

डा॰ अम्बेडकर: संघीय न्यायालय द्वारा, जहां भी वह निर्देश देगा।

श्री आयंगर: अवमानना का वारंट कौन लागू करेगा?

डॉ॰ अम्बेडकर: संघीय सरकार अपने अधिकारियों के द्वारा। मैं चाहता हूं कि संघीय सरकार के पास ऐसा अधिकार हो। यह अमरीका के संविधान में निहित शक्तियों में से एक है। और आस्ट्रलियाई संविधान की धारा 120 के अधीन संघीय सरकार को उन लोगों को अपनी हिरासत में लेने का अधिकार है, जो संघीय कानून का उल्लंघन करते हैं। कल्पना कीजिए कि

कोई संघीय कानून पारित किया गया और किसी राज्य का कोई नागरिक उसका निराकरण करता है और सर्वोच्च न्यायालय उसके विरूद्ध निर्णय देता है तथा राज्य की भावनाएं इतनी तीव्र हैं कि वह उसे जेल में नहीं रखना चाहता, तब मेरे विचार में धारा 120 में प्रदत्त शक्तियों के अधीन, संघीय सरकार की अपनी जेलें होनी चाहिए। अगर संघीय सरकार यह चाहती हैं कि सभी मामलों में न्याय हो, तब उसे इस बात की भी शक्ति प्राप्त होनी चाहिए कि वह निर्णयों को लागू करा सके। वह इस कार्य को कैसे करेगी, इस पर मैं आगे क्या कहूं? मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि संविधान में संघीय सरकार को यह शक्ति दी जानी चाहिए कि वह सारे भारत में निर्णयों और फैसलों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करा सके। मुझे यहां यह दुबारा कहने की जरूरत नहीं जान पड़ती कि अगर इसके लिए किए गए उपाय निष्प्रभावी रहते हैं, तब उसका अधिकार भी निष्प्रभावी हो जाता है।

श्री जयकर: यदि जातीय या सांप्रदायिक दंगों की स्थिति बन जाती है, तब ऐसा कोई भी उपाय नहीं हो सकता, जो कारगर कहा जा सके।

डॉ॰ अम्बेडकर : यह सवाल मेरे जवाब देने का नहीं है। मैं अपना मामला खुद उठाऊंगा। कल्पना कीजिए कि बंबई प्रसिडेंसी में एक नागरिक सत्याग्रह होता है और यह हमारा एक मूल अधिकार है– मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार, जिसका उल्लेख मैंने इस ज्ञापन में किया, जो मैंने प्रस्तुत किया है। कल्पना कीजिए कि मजिस्ट्रेट यह आदेश देता है कि हम लोग शांति भंग कर रहे हैं और अगर हम इसे रोकते नहीं हैं, तब हमें कैद कर लिया जाएगा। कल्पना कीजिए कि हम संघीय न्यायालय से उसके उस अधिकार के तहत अनुरोध करते हैं, जिसके बारे में मैंने कहा है कि ये अधिकार उसे मिलने ही चाहिए और संघीय न्यायालय यह निर्णय देता है कि मजिस्ट्रेट ने गलती की है। कल्पना कीजिए कि हम इस आदेश के कार्यान्वयन के लिए गृह सदस्य से अनुरोध करते हैं। यह गृह सदस्य, यदि कट्टरपंथियों के प्रभाव में है, तो वह कहेगा, 'मैं यह नहीं कर सकता।' मैं चाहता हूं कि ऐसी परिस्थिति में अपने कानूनों को प्रभावी बनाने के लिए केंद्रीय सरकार के पास शक्ति हो।

श्री जिन्ना : मैं सोचता हूं कि आप जो कुछ कह रहे हैं, उसमें बहुत वजन है कि किसी डिक्री या वारंट पर अमल कराने के लिए इसके पीछे सबसे पहले तो पुलिस की ताकत हो और दूसरे आखिरी ताकत फौज है। जब तक आपकी संघीय सरकार के सदस्य के पास फौज नहीं होगी, तब तक आप यह उम्मीद किस तरह कर सकते हैं कि वह डिक्री या वारंट पर अमल करा सकेगा?

डॉ॰ अम्बेडकर : उसके पास यह सब होगा। मैं उन पर कोई सीमा नहीं लगा रहा हूं। मैं उन्हें वे सारे अधिकार दूंगा, जो वे इस कार्य के लिए जरूरी समझते हैं। यह उस हद तक हो सकता है। मैं इसे मना नहीं करता। लेकिन जो बात मैं कह रहा हूं, वह यह है कि अगर आप मूल अधिकारों या अल्पसंख्यक अधिकारों, जो भी हों, उनके तहत लोगों की सुरक्षा सुनिश्चित करना चाहते हैं, तब मैं यही कहूंगा कि शक्ति दी जानी चाहिए और मैं सभी प्रयोजनों के लिए यह कहता हूं कि यह शक्ति संघीय सरकार में निहित होनी चाहिए, जिससे संघीय न्यायालय के निर्णय कार्यान्वित किए जा सकें।

श्री जिन्ना: सिर्फ शक्ति ही नहीं निहित की जानी चाहिए, बल्कि इस शक्ति को अमल में लाने के लिए उनके हाथों में एक व्यवस्था भी होनी चाहिए।

डॉ॰ अम्बेडकर: इसके तहत उनके पास व्यवस्था होगी।

श्री जिन्ना : यह शक्ति संघीय सरकार में निहित की जा सकती है, लेकिन इस शक्ति को कार्यान्वित तभी किया जा सकता है, जब आपके पास इसे कार्यान्वित करने के लिए व्यवस्था भी हो।

डॉ॰ अम्बेडकर: फौज है।

श्री जिन्ना : ठीक है, और इसलिए अध्यक्ष ने यह भी सुझाव दिया, आपने शायद इस पर ध्यान नहीं दिया कि अंततः सम्राट (क्राउन) ही संघीय न्यायालय के निर्णयों और फैसलों को कार्यान्वित किए जाने के लिए उत्तरदायी होगा और यही वहां कहा गया है कि 'क्राउन' उत्तरदायी होगा, क्योंकि अब तक मैं यह समझता हूं कि स्थिति यह है कि सुरक्षा 'क्राउन' का विषय होगा। अध्यक्ष महोदय! क्या मैं सही हूं?

अध्यक्ष: हां, यह जरूरी है।

डॉ॰ अम्बेडकर: लेकिन मैं जिस बात पर जोर दे रहा हूं, वह यह है कि अगर आप एक ओर संघीय सरकार और दूसरी ओर प्रांतीय सरकार, इन दोनों के बीच कार्यक्षेत्र का बंटवारा कर रहे हैं और अगर आप संघीय सरकार को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को कार्यान्वित कराने के लिए विधायी या दूसरी शक्ति नहीं देते हैं, तब वह उनको कार्यान्वित नहीं करा सकेगी। मेरा यही निवेदन है।

श्री जयकर: लेकिन तब भी मुश्किल दूर नहीं होती। मेरा आशय सांप्रदायिक भावना से है, जो आप सोच रहे हैं। मुश्किल वहां भी दूर नहीं होती। ■

(शेष अगले अंक में)

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और 21वीं सदी का भारत

डॉ॰ अम्बेडकर द्वारा परिकल्पित 21वीं सदी का भारत की संकल्पना पर पांचवां डॉ॰ बी.आर. अम्बेडकर स्मृति व्याख्यान के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी का व्याख्यान

मुझे डॉ. अम्बेडकर फाउंडेशन द्वारा आयोजित किए जा रहे वर्ष 2014 का पांचवां डॉ॰ बी.आर. अम्बेडकर स्मृति व्याख्यान देकर प्रसन्नता हो रही है। मैं यह सम्मान प्रदान करने के लिए सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री श्री थावरचंद गेहलोत तथा आयोजकों के प्रति आभारी हूं।

2. डॉ॰ बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर हमारे स्वतंत्रता संघर्ष के एक असाधारण नेता तथा हमारे समाज के दलित और पिछड़े वर्गों के अधिकारों के जुझारू योद्धा थे। भारत रत्न से सम्मानित, वह विद्वान, पत्रकार, शिक्षाविद्, विधि विशेषज्ञ, समाज सुधारक तथा राजनीतिक नेता थे। वह भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता थे तथा उन्हें हमारे संस्थापक राष्ट्र की स्थापना के इस दस्तावेज़ का अत्यंत परिश्रम के साथ प्रारूप तैयार करने में उनकी भूमिका के लिए सदैव याद रखा जाएगा।

3. डॉ॰ अम्बेडकर का दर्शन और जीवन साहस और विश्वास की प्रतिमूर्ति है। उन्होंने अपनी जाति और गरीब आर्थिक पृष्ठिभूमि के कारण बहुत सी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करते हुए ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। उन्होंने मुंबई के एलफिस्टन कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और उसके बाद उन्हें न्यूयॉर्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की गई, जहां से उन्होंने डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद 1916 में यूनाइटेड किंगडम चले गए, जहां उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में अध्ययन किया और बाद में उन्हें ग्रेज इन द्वारा बैरिस्टर-एट-लॉ की उपाधि प्रदान की गई। भारत में अपनी वापसी के बाद, डॉ॰ अम्बेडकर पीड़ित वर्गों की आवाज़ बन गए और उनके उत्थान के लिए बहुत से संगठन बनाएं।

4. डॉ॰ अम्बेडकर की विरासत और भारत को उनके योगदान के दर्शन बहुत से क्षेत्रों में किए जा सकते हैं। **'द इवोल्यूशन ऑफ फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया'** शीर्षक से पी.एच.डी. के उनके 1923 के शोध-पत्र ने भारत के वित्त आयोग के लिए सैद्धांतिक आधार प्रदान किया, जिसे बाद में वित्त की ऊर्ध्व और क्षैतिज संतुलन की समस्या के समाधान के लिए संविधान के अनुच्छेद 280 के द्वारा स्थापित किया गया। इसी प्रकार भारतीय रिजर्व बैंक की संकल्पना भी डॉ॰ अम्बेडकर द्वारा 1925 में "रॉयल कमीशन ऑन इंडियन करैंसी एंड फाइनेंस" के समक्ष प्रस्तुत दिशा-निर्देशों पर आधारित थी। आयोग के सदस्यों ने डॉ॰ अम्बेडकर की पुस्तक ''ऑफ द रूपी-इट्स प्रॉबलम्स एंड इट्स सोल्यूशन'' को एक अमूल्य संदर्भ स्रोत मात्र और केंद्रीय विधायी सभा ने दिशा-निर्देशों को अंततः भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के रूप में पारित कर दिया।

5. वायसराय की परिषद में श्रम मंत्री के रूप में डॉ॰ अम्बेडकर ने 1942 में काम के घंटे 12 से घटा कर 8 करने की लड़ाई का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया। उन्होंने भारत में रोजगार केंद्र की स्थापना के विचार का योगदान दिया। वे केंद्रीय तकनीकी विद्युत बोर्ड, राष्ट्रीय विद्युत ग्रिड प्रणाली तथा केंद्रीय जल सिंचाई और नौवहन आयोग की स्थापना के लिए लगभग अकेले जिम्मेदार थे। डॉ॰ अम्बेडकर ने दामोदर घाटी परियोजना, हीराकुंड परियोजना तथा सोन परियोजना की स्थापना में एक अहम् भूमिका निभाई।

6. पढ़ने के शौकीन, डॉ॰ अम्बेडकर शिक्षा को निरक्षरता, अज्ञान और अंधविश्वास से सामाजिक रूप से पिछड़ों की मुक्ति का साधन मानते थे। उन्होंने समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षिक हितों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 1945 में पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना की। डॉ॰ अम्बेडकर ने लैंगिक समानता के लिए भी संघर्ष किया तथा उन्होंने उत्तराधिकार और विवाह में महिलाओं के समान अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी। उन्होंने 1951 में उस समय कैबिनेट से त्याग पत्र दे दिया जब उनके हिन्दू कोड बिल का मसौदा संसद का समर्थन प्राप्त करने में नाकाम रहा।

7. निस्संदेह, डॉ॰ अम्बेडकर का

सबसे बड़ा और सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान भारत के संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में उनकी भूमिका थी। भारी दूरदर्शिता तथा पांडित्यपूर्ण विद्वता से डॉ॰ अम्बेडकर ने न केवल संविधान सभा के माध्यम से एक असाधारण प्रारूप पारित करवाया बल्कि विभिन्न प्रावधानों के पीछे के सिद्धांत और कारणों को भी प्रस्तुत किया।

8. आज के व्याख्यान का विषय "डॉ॰ अम्बेडकर द्वारा परिकल्पित 21वीं सदी में भारत की संकल्पना है। डॉ॰ अम्बेडकर के स्पष्ट विचार थे कि वह भारत का सामाजिक, आर्थिक और राजनीति कायापलट देखना चाहते थे। वह चाहते थे कि भारत का विशाल जनसमूह स्वतंत्रता और समान अवसरों का लाभ उठाए। वह जातिवाद तथा सांप्रदायिकता से भारत को मुक्त करना चाहते थे तथा शिक्षा और विकास को देश के प्रत्येक कोने में पहुंचाना चाहते थे। वह चाहते थे कि भारत एक ऐसे आधुनिक राष्ट्र के रूप में उभरे जहां स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा फले-फूले तथा पिछड़ापन समाप्त हो जाए। डॉ॰ अम्बेडकर आमूलचूल बदलाव में विश्वास करते थे, परंतु वह इन बदलाव को रक्तपात के जरिए लाना नहीं चाहते थे। वह संसदीय लोकतंत्र और विधिक शासन के माध्यम से परिवर्तन चाहते थे।

9. डॉ॰ अम्बेडकर भारतीय संविधान को सामाजिक आर्थिक बदलाव के ऐसे शक्तिशाली साधन के रूप में देखते थे और इसी इरादे से उन्होंने संविधान के प्रारूप में ऐसे अनेक प्रावधान शामिल किए जिनसे सरकार की पूर्ण जवाबदेही, नियंत्रण उपाय, मौलिक अधिकारों की सुरक्षा, स्वतंत्र संस्थान तथा सामाजिक लोकतंत्र की दिशा में निरंतर बढ़ने में मदद मिल सके।

10. संविधान सभा में डॉ॰ अम्बेडकर के भाषणों का हमारे संविधान तथा आधुनिक राजनीतिक इतिहास के लिए अत्यधिक शैक्षिक महत्त्व है। डॉ॰ अम्बेडकर ने 4 नवम्बर 1948 को संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते समय भाषण में राष्ट्रपति शासन व्यवस्था की तुलना में संसदीय व्यवस्था के पक्ष-विपक्ष को विस्तार से बताया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि संविधान प्रारूप में संसदीय प्रणाली पर आधारित कार्यपालिका की सिफारिश के अंतर्गत स्थायित्व के स्थान पर दायित्व को प्राथमिकता क्यों दी गई।

"सरकार की दोनों प्रणालियां वास्तव में लोकतांत्रिक हैं और दोनों में चुनाव करना बहुत आसान नहीं है। एक लोकतांत्रिक कार्यपालिका को दो शर्ते पूरी करनी चाहिए-(1) इसे किसी स्थिर कार्यपालिका बनना चाहिए (2) इसे एक जिम्मेदार कार्यपालिका बनना चाहिए। दुर्भाग्यवश ऐसी व्यवस्था निर्मित करना अभी तक संभव नहीं हो पाया है जिसमें दोनों की बराबर मात्रा सुनिश्चित हो सके। आपके पास ऐसी प्रणाली हो सकती है जो आपको अधिक स्थिरता परंतु कम जिम्मेदारी प्रदान करे या आपके पास ऐसी प्रणाली हो सकती है जो आपको कम स्थिरता परंतु अधिक जिम्मेदारी प्रदान करे.....संयुक्त राज्य अमरीका जैसी गैर-संसदीय व्यवस्था मौजूद है, कार्यपालिका के दायित्व का मूल्यांकन दैनिक और आवधिकर दोनों हैं दैनिक मूल्यांकन संसद सदस्यों द्वारा प्रश्नों, प्रस्तावी, विश्वास मतों, स्थगन प्रस्तावों तथा संबोधनों पर बहस द्वारा किया जाता है। आवधिक मूल्यांकन निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचन के दौरान किया जाता है जो प्रत्येक पांच वर्ष या उससे पहले होता है। यह अनुभव किया जाता है कि दायित्वों का दैनिक मूल्यांकन जो अमरीकी प्रणाली के अंतर्गत नहीं है आवधिक मूल्यांकन से कहीं ज्यादा प्रभावी है और भारत जैसे देश के लिए बेहद जरूरी है। संविधान के प्रारूप में कार्यपालिका की संसदीय व्यवस्था की सिफारिश करते हुए संविधान के प्रारूप में स्थिरता से अधिक दायित्व को प्राथमिकता दी गई है।"

11. डॉ॰ अम्बेडकर ने बताया कि किस प्रकार संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति की स्थिति अंग्रेजी संविधान के अंतर्गत राजा के समान रहेगी:

"वह राष्ट्र के अध्यक्ष हैं परंतु कार्यपालिका के नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं परंतु राष्ट्र पर शासन नहीं करते। वह राष्ट्र का प्रतीक हैं। प्रशासन में उनका स्थान मुहर पर समारोहिक व्यवस्था के रूप में होगा जिसके द्वारा राष्ट्र के निर्णय सार्वजनिक किए जाते हैं..... भारतीय संघ के राष्ट्रपति सामान्यत: अपने मंत्रियों की सलाह द्वारा बाध्य होंगे। वह उनकी सलाह के विपरीत कुछ नहीं कर सकते, न ही उनकी सलाह के बिना कुछ कह सकते हैं।"2

12. संविधान के प्रारूप में प्रस्तावित संघ के विशिष्ट स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए, डॉ॰ अम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि भारतीय परिस्थिति की अत्यावश्यकता के अनुकूल निर्मित सरकार का संघीय स्वरूप समय की जरूरत हैं।

"संविधान का प्रारूप, उतना ही संघीय है जितना यह कथित दोहरी शासनतंत्र की व्यवस्था स्थापित करता है। प्रस्तावित संविधान के तहत यह दोहरी शासन व्यवस्था केंद्र में संघ को तथा राज्य को बाहरी परिधि में शामिल करेगी। इनमें से प्रत्येक, संविधान द्वारा क्रमश: सौंपे गए क्षेत्र में प्रयोग किए जाने वाली सम्प्रभु शक्तियों से संपन्न होंगे.....संविधान का प्रारूप समय और परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुसार एकल और संघीय दोनों हो सकता है। सामान्य काल में, इसे संघीय प्रणाली के रूप में कार्य करने के लिए तैयार किया गया है। परंतु इसे ऐसे निर्मित किया गया है कि यह युद्धकाल में एकल प्रणाली के रूप में कार्य कर सके।"3

13. डॉ॰ अम्बेडकर ने बहुत परिश्रम से यह बताने का प्रयास किया था कि नया गणतंत्र राज्यों के परिसंघ के बजाय राज्यों का संघ होगा। राज्यों को अलग होने का

अधिकार नहीं होगा। उन्होंने कहा था:

"परिसंघ एक संघ है क्योंकि यह अखंड है। यद्यपि देश और जनता को प्रशासन की सहूलियत के लिए विभिन्न राज्यों में बांटा जा सकता है, परंतु देश कुल मिलाकर अखंड है, इसकी जनता एक ही स्रोत से उत्पन्न अकेली परमसता के अधीन रहेगी"4

14. डॉ॰ अम्बेडकर ने मौलिक अधिकार पर एक सुपरिभाषित और व्यापक अध्याय शामिल करना सुनिश्चित किया जिसने विशेष रूप से अस्पृश्यता को समाप्त किया, सभी नागरिकों को समान अधिकारों की गांरटी दी तथा सामाजिक संबंधों में सभी प्रकार के भेदभाव पर प्रतिबंध लगाया। डॉ॰ अम्बेडकर मानते थे कि अल्पसंख्यकों और उनके धर्म की सुरक्षा परम महत्व है। इस प्रकार संविधान प्रत्येक व्यक्ति को आस्था और पूजा की स्वतंत्रता प्रदान करता है तथा अल्पसंख्यकों को अपने धार्मिक मामलों के बंदोबस्त की स्वतंत्रता देता है। डॉ॰ अम्बेडकर ने निम्नवत आधार पर ऐसी सुरक्षा को तर्कसंगत ठहराया है:

"बहुसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यकों के अस्तित्व को नकारना गलत है। अल्संख्यकों के लिए स्वयं को ऐसा ही बनाए रखना भी उतना ही गलत है। एक समाधान खोजा जाना चाहिए जो दोहरा उद्देश्य पूरा करे। इसे शुरूआत में अल्पसंख्यकों के अस्तित्व को मान्यता देनी चाहिए। इसे इस प्रकार का होना चाहिए कि यह किसी दिन बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यको का आपस में विलय कर सके। संविधान सभा द्वारा प्रस्तावित समाधान का स्वागत किया जाना चाहिए क्योंकि यह ऐसा समाधान है जो इस दोहरे उद्देश्य को पूरा करता है।"5

15. डॉ॰ अंबेडकर ने भारतीय संविधान की एक अनूठी विशेषता, राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के निर्धारण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन सिद्धांतों में यह अधिदेश है कि राष्ट्र एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की प्राप्ति और सुरक्षा द्वारा लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा। ये सिद्धांत एक सामाजिक लोकतंत्र की नींव रखते हैं। डॉ॰ अम्बेडकर के शब्दों में:

"हमें अपने राजनीतिक लोकतंत्र को एक सामाजिक लोकतंत्र भी बनाना होगा। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? एक जीवन पद्धति जो यह मानती है कि स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा जीवन के सिद्धांत हैं। स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के इन सिद्धांतों को इन तीन तत्वों से अलग चीज मानकर नहीं चलना होगा। ये इस अर्थ में एक सूत्रता अथवा त्रितत्व की रचना करते हैं कि इनमें से एक को दूसरे से पृथक करना लोकतंत्र के अत्यावश्यक उद्देश्य को विफल करना है.....समानता के बिना, स्वतंत्रता से कुछ लोगों का प्रभुत्व बहुत से लोगों पर हो जाएगा। स्वतंत्रता हीन समानता व्यक्तिगत प्रयास को समाप्त कर देगें। भाईचारे के बिना स्वतंत्रता और समानता के बिना स्वतंत्रता से कुछ लोगों का प्रभुत्व बहुत से लोगों पर हो जाएगा। स्वतंत्रता हीन समानता व्यक्तिगत प्रयास को समाप्त कर देगी। भाईचारे के बिना स्वतंत्रता और समानता सहज परिघटना नहीं बन सकेंगी। इन्हें लागू करने के लिए एक सिपाही की आवश्यकता होगी......सामाजिक धरातल पर, हमारे भारत में सोपानबद्ध असमानता के सिद्धांतों पर आधारित समाज है जिसका अर्थ है एक का उत्थान और अन्यों की अवनति। आर्थिक आधार पर, हमारे यहां ऐसा समाज है जिसमें ऐसे कुछ लोग हैं जिनके पास घोर निर्धनता में जीवनयापन करने वालों की तुलना में अथाह धन सम्पत्ति है.......हम विरोधाभास का ऐसा जीवन कब तक जीएंगे? हमें यथाशीघ्र इस विरोधाभास को दूर करना होगा। अन्यथा इस असमानता से पीड़ित लोग राजनीतिक लोकतंत्र के ढांचे को उखाड़ फेंकेंगे......6"

16. राज्य के नीति के नीति निर्देशक सिद्धांतों की कुछ लोगों द्वारा आलोचना की गई इन्हें केवल पवित्र घोषणा कहा गया है। इस आलोचना के प्रत्युत्तर में, डॉ॰ अम्बेडकर ने कहा:

"जिसकी भी सत्ता होगी, वह अपनी मनमानी करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा। इसका प्रयोग करते हुए उसे नीति निर्देशक सिद्धांत कहे जाने वाले अनुदेशों – इन निर्देशों का सम्मान करना होगा। वह इनकी अनदेखी नहीं कर सकता। हो सकता है कि उसे विधिक न्यायालय में इनके जवाब न देना पड़े। परंतु उसे निश्चित रूप से चुनाव के समय में निर्वाचकों के समक्ष जवाब देना होगा।"7

17. डॉ॰ अम्बेडकर अपने इस विश्वास पर दृढ़ थे कि हमारी न्यायपालिका को कार्यपालिका से स्वतंत्र होना चाहिए तथा उसे अपने आप में सक्षम भी होना चाहिए। हालांकि वह मानते थे कि कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच टकराव अवश्यंभावी है और ऐसा वास्तव में यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक एक दूसरे के कामकाज पर अंकुश के रूप में कार्य करे। उनका विचार था:

"मैं स्वयं भी किसी एक दल के सदस्यों द्वारा भरी हुई विधायिका की संभावना को पूरी तरह नकार नहीं सकता, जो हमारी नज़र में एक व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले उन कुछ मौलिक सिद्धांतों को निरस्त या अवहेलना करने वाले कानून बना सकते हैं। इसी प्रकार, मैं यह भी समझ पाता कि संघीय या उच्चतम न्यायालय में बैठे हुए पांच या छह सज्जनों द्वारा विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों की जांच पड़ताल और उनके व्यक्तिगत विवेक या अपने पूर्वाग्रह या संकीर्णताओं के चलते यह कैसे तय कर सकते हैं कि कौन सा अच्छा है और कौन सा बुरा है।"8

18. डॉ॰ अम्बेडकर ने सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को शिक्षित

बनने, संघर्ष करने और संगठित बनने का आह्वान किया। तथापि संवैधानिक तरीकों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता अविचल थी और उन्होंने जागरूक और तर्कशील जन संघर्ष के मार्ग की वकालत की थी। उन्होंने कहा था।

"......हमें क्रांति के रक्तपातपूर्ण तरीकों का परित्याग कर देना चाहिए...... जब आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को हासिल करने के संवैधानिक तरीकों के लिए कोई रास्ता नहीं बचता था तब असंवैधानिक तरीकों के लिए भरपूर औचित्य होता था। परंतु जहां संवैधानिक तरीके उपलब्ध हैं, वहां इन असंवैधानिक तरीकों का कोई औचित्य नहीं है। ये तरीके कुछ नहीं है बल्कि अराजकता की जड़ें हैं और जितनी शीघ्र इन्हें काट दिया जाए, उतना हमारे लिए बेहतर है।"9

19. डॉ॰ अम्बेडकर मानते थे कि मजबूत स्वतंत्र संस्थाएं लोकतंत्र के आधार स्तंभों का निर्माण करती हैं और इन्हीं से इसका अस्तित्व सुनिश्चित होगा। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि संविधान में स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान हो तथा संवैधानिक उपचार का अधिकार एक मौलिक अधिकार बने।

20. अनुच्छेद 32-संवैधानिक अधिकार के बारे में बोलते हुए, डॉ॰ अम्बेडकर ने कहा था:

"यदि मुझसे इस संविधान के सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद के तौर पर किसी खास अनुच्छेद का नाम पूछा जाए, जिसके बिना संविधान बेकार हो जाएगा तो मैं इसके सिवाय किसी दूसरे अनुच्छेद का नाम नहीं लूंगा। यह संविधान की आत्मा है और इसका प्राण है।"10

21. डॉ॰ अम्बेडकर ने एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की जरूरत बताई तथा संविधान के अनुच्छेद 324 के जरिए इसकी स्थापना की। उनके शब्दों में:

"चुनावों की निष्पक्षता के लिए, चुनावों की शुद्धता के लिए सबसे बड़ी सुरक्षा कार्यपालिका की शक्ति के हाथों से इस कार्य को लेकर इसे किसी स्वतंत्र प्राधिकरण को सौंपना है।"11

22. इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि भारत के निर्वाचन आयोग ने लगातार देश के भीतर और विश्वभर में व्यापक प्रशंसा अर्जित की है। हमारे सबसे पहले चुनाव आयुक्त, श्री सुकुमार सेन को सूडान के चुनावों का पर्यवेक्षण करने के लिए आमंत्रित किया गया था और तब से हमारे निर्वाचन आयोग की सेवाएं और विशेषज्ञता बहुत से देशों द्वारा मांगी गई हैं। हमने हाल ही में देखा है कि किस प्रकार राष्ट्र की विशाल विविधता और लगभग 834 मिलियन मतदाताओं के बावजूद हाल ही में 16वीं लोकसभा के चुनाव कुशलता और स्वतंत्रता के साथ आयोजित किए गए। अक्तूबर, 1989 तक निर्वाचन आयोग केवल एक सदस्यीय आयोग था जब पहली बार इसे एक बहुसदस्यीय आयोग बनाते हुए दो अतिरिक्त आयुक्त नियुक्त किए गए।

23. इसी प्रकार, महालेखापरीक्षक के पद के बारे में, उन्होंने कहा था:

"मेरी राय में यह पदाधिकारी अथवा अधिकारी भारत के संविधान का संभवत: सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी है। वह एक व्यक्ति है जो इस बात पर नजर रखेगा कि संसद द्वारा दत्तमत व्ययों में बढ़ोतरी न हो अथवा संसद द्वारा विनियोग अधिनियम में निर्धारित से अलग न हो। यदि इस अधिकारी को अपना कर्त्तव्य निभाना है और मैं मानता हूं कि उसके कर्त्तव्य न्यायपालिका के कर्त्तव्य से बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं......मैं व्यक्तिगत तौर पर महसूस करता हूं कि उसे न्यापालिका से भी अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए...."12

24. डॉ॰ अम्बेडकर की स्पष्ट राय थी कि कोई संविधान पूर्ण नहीं होता और अंतत: संविधान की कारगरता जनता, राजनीतिक दलों और उनकी राजनीति पर निर्भर होगी। उन्होंने संविधान के बारे में जोर देकर कहा था:

"यह कारगर है, यह लचीला है तथा शांतिकाल और युद्धकाल दोनों में देश को एकजुट रखने के लिए प्र्याप्त रूप से मज़बूत है। वास्तव में, मेरे विचार से, यदि नए संविधान के तहत गलत कार्य हो जाएं, तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब था। तब हमें यही कहना पड़ेगा कि व्यक्ति बुरा है।"13

25. उपर्युक्त के संबंध में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि व्यवहार में हमारी राजनीतिक प्रणाली नवान्वेषी और लचीली रही है। मजबूत संस्थाएं और संवैधानिक पद्धतियों के निर्माण की डॉ॰ अम्बेडकर की प्रतिबद्धता के आधुनिक समय में बहुत से रोचक परिणाम निकले हैं। उदाहरण के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम किसी भी सरकारी विभाग से सूचना प्राप्त करने में सशक्त और सक्षम बनाने के लिए कानून द्वारा निर्मित एक अद्वितीय और शक्तिशाली माध्यम है जिससे खुलापन और पारदर्शिता आ रही है। इसी प्रकार, भारत के उच्चतम न्यायालय ने जनहित मुकदमें के जरिए आम आदमी को केवल पोस्टकार्ड भेजकर न्याय के सर्वोच्च न्यायालयों तक पहुंचने में समर्थ बनाया है। उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय ने भी मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का अपने आप संज्ञान लिया है तथा परम्परागत विचारों को एक तरफ करते हुए कार्रवाई की है अंतत: हमने हाल ही में श्री अन्ना हजारे के नेतृत्व में एक जनप्रिय आंदोलन की परिघटना देखी जिसके परिणामस्वरूप सिविल समाज ने अब तक संसद और राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों के लिए ही आरक्षित वैधानिक प्रक्रिया में सीधी भूमिका हासिल की। लोकपाल बिल मसौदे को संसद में प्रस्तुत करने और बाद में कानून के रूप में अपनाने से पूर्व सिविल समाज के प्रतिनिधियों तथा सरकार के वरिष्ठ सदस्यों के बीच विचार-विमर्श के जरिए अंतिम रूप दिया गया। इन सभी से भारतीय

लोकतंत्र की मजबूती और संविधान की जीवंतता प्रतिबिम्बित होती है।

मित्रों, देवियों और सज्जनों,

26. स्वतंत्रता के बाद से भारत की यात्रा बहुत सी सफलताओं से परिपूर्ण रही है। हमारे संस्थापकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती सरकार की एक व्यवहार्य प्रणाली निर्मित करनी थी। हमने विगत 67 वर्षों के दौरान, अपनी राजनीतिक प्रणाली को बनाए रखने और उसके सहयोग के लिए एक सफल संसदीय लोकतंत्र, एक स्वतंत्र न्यायपालिका तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक आदि जैसी सशक्त संस्थाओं की स्थापना की है।

27. एक सबसे बड़ा और सबसे जटिल मुद्दा, जिस पर स्वतंत्र भारत को ध्यान देना था, वह हमारी आबादी के एक बड़े हिस्से का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बहिष्करण था। सामाजिक रूप से अलग-थलग समुदाय के सदस्यों को सशक्त बनाने तथा उन्हें राष्ट्रीय मुख्यधारा में शामिल करने के लिए संविधान के माध्यम से सकारात्मक कार्रवाई की एक विशिष्ट और व्यापक नीति अपनाई गई।

28. आज, भारत को अपने लोकतांत्रिक और पंथनिरपेक्ष मूल्यों तथा एक समावेश और आधुनिक समाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए समूचे विश्व में जाना जाता है। आर्थिक मोर्चे पर, हमने अपनी जनता के एक बड़े वर्ग को गरीबी रेखा से नीचे से निकालकर गरिमापूर्ण जीवन के स्तर पर लाते हुए, बहुत से महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की है। भारत अब क्रय शक्ति समता के पैमाने पर दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। पिछले छह दशकों के दौरान, गरीबी का अनुपात 60 प्रतिशत से गिरकर 30 प्रतिशत से भी कम हो गया है। भारत एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक शक्ति संपन्न राष्ट्र बन गया है जिसकी उन्नत वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक क्षमताओं, औद्योगिक आधार तथा विश्वस्तरीय मानव संसाधनों के लिए सराहना की जाती है।

मित्रों, देवियो और सज्जनो,

29. यह एक सच्चाई है कि सभी उपलब्धियों, जिन पर हमें गौरव है, के बावजूद हमारा लोकतंत्र बहुत-सी चुनौतियों का सामना कर रहा है। बड़ी संख्या में भारतीय अभी भी गरीबी, अभाव और तंगी में जी रहे हैं। दुर्भाग्यवश जातिवाद भी एक और सच्चाई है जिसे हमें अभी अपने देश और समाज से मिटाना है।

30. डॉ॰ अम्बेडकर ने एक ऐसे भारत का सपना देखा था, जिसमें समाज के सभी वर्ग सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से सक्षम हों; एक ऐसा भारत जिसमें हमारी जनता के हर वर्ग को यह भरोसा हो कि देश तथा उसके भविष्य में उनका भी बराबर का ही हिस्सा है तथा ऐसा भारत जिसमें सामाजिक हैसियत जाति के पायदान अथवा आर्थिक धन-दौलत के आकलन से नहीं बल्कि व्यक्तिगत गुणों से तय हो। डॉ॰ अम्बेडकर की परिकल्पना एक ऐसे भारत की थी जिसमें सामाजिक प्रणाली तथा अर्थव्यवस्था, मानवीय क्षमताओं के पूर्ण विकास का अवसर प्रदान करे तथा यह सुनिश्चित करे कि हमारे नागरिक सम्मानित जीवन जी सकें।

डॉ॰ अम्बेडकर ने एक ऐसे भारत का सपना देखा था, जिसमें समाज के सभी वर्ग सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से सक्षम हों।

31. हममें से हर व्यक्ति की यह जिम्मेदारी है कि हम डॉ॰ अम्बेडकर के सपनों को साकार करने के लिए पूर्ण प्रयास करें। हमें अपने लोकतंत्र की संरक्षा तथा उसकी मजबूती के लिए हर संभव प्रयास करने होंगे। हमें गरीबी तथा पूर्वाग्रहों को दूर भगाने के लिए मिल-जुलकर तथा समर्पित होकर प्रयास करने होंगे। हमें देश में उभरने वाली विभाजनकारी ताकतों के खिलाफ निरंतर सतर्क रहना होगा। हमें कुपोषण, अज्ञान, बेरोजगारी तथा अवसंरचना की चुनौतियों का बहुत तेज गति से समाधान करना होगा। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि छुआछूत अथवा जाति, पंथ, धर्म अथवा लिंग के आधार पर भेदभाव किसी भी कोने में न हो। केवल इन प्रयासों के द्वारा ही हम प्रमुख राष्ट्रों के समुदाय में अपना वाजिब स्थान पा सकते हैं।

32. डॉ॰ अम्बेडकर का संदेश, उनके कार्य और उनका जीवन हमें हमारे राष्ट्र निर्माताओं से प्राप्त शानदार संविधान, मज़बूत लोकतंत्र तथा कारगर, स्वतंत्र संस्थाओं की लगातार स्मरण दिलाते रहते हैं। इसी के साथ, यह हमें एक ऐसा समतामूलक समाज निर्मित करने की दिशा में आगे तय की जाने वाली यात्रा का भी स्मरण कराता है जिसमें मानव से मानव के बीच कोई भेद न हो।

33. डॉ॰ अम्बेडकर द्वारा 25 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा को संबोधित करते हुए कहे गए इन शब्दों से मैं अपनी बात समाप्त करता हूं:

"जाति एवं पंथ के रूप में हमारे पुराने शत्रुओं के साथ ही, अब हमारे यहां विभिन्न तथा विरोधी राजनीतिक दल होंगे। क्या भारतीय, देश को अपने पंथ से ऊपर रखेंगे अथवा पंथ को देश से ऊपर रखेंगे? मुझे नहीं पता। परंतु यह तय है कि यदि दल पंथ को देश से ऊपर रखते हैं तो हमारी स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाएगी और शायद हम सदा के लिए इसे खो दें। हम सभी को इस स्थिति से दृढ़ संकल्प होकर बचना होगा। हमें अपने खून की आखिरी बूंद के साथ अपनी आज़ादी की रक्षा का संकल्प लेना होगा।" ■

धन्यवाद, जय हिंद।

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय (भारत सरकार की योजनाएं)

प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना (पीएमएजीवाई)

उद्देश्य

पीएमएजीवाई का लक्ष्य 50% से अधिक की अनुसूचित जाति जनसंख्या वाले चुने गए गांवों का ''आदर्श ग्राम'' के रूप में समेकित विकास सुनिश्चित करना है ताकि अन्य बातों के साथ-साथ

i. उनके पास अधिकतम संभव सीमा तक अपने सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अपेक्षित भौतिक और सामाजिक अवसंरचना हो।

ii. साझा सामाजिक-आर्थिक संकेतकों (यथा, साक्षरता दर, प्राथमिक शिक्षा पूरा करने की दर, आईएमआर/एमएमआर, उत्पादक संपत्तियों का स्वामित्व आदि) के रूप में गांव की अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या के बीच की असमानता को दूर किया जा सके और इन संकेतकों को कम से कम राष्ट्रीय औसत तक बढ़ाया जा सके; तथा

iii. अस्पृश्यता, भेदभाव, अलगाव और अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अत्याचारों तथा बालिकाओं/महिलाओं के साथ भेदभाव, मद्यपान और नशीले (दवा) पदार्थ आदि जैसी अन्य सामाजिक बुराइयों को समाप्त किया जा सके तथा समाज के सभी वर्ग सम्मान और समानता तथा अन्य वर्गों के साथ सामंजस्य से जीवन-यापन कर सके।

योजना के संघटक

योजना के दो मुख्य संघटक निम्नलिखित हैं:-

1. प्रादेशिक क्षेत्र संबंधी संघटक योजना का प्रथम संघटक प्रादेशिक प्रवृत्ति का है तथा विशेष गांव पर केन्द्रित है तथा इसके दो मुख्य उपसंघटक इस प्रकार हैं-

   (क) चयनित गांवों में केन्द्र तथा राज्य सरकार की मौजूदा योजनाओं का अभिसारी कार्यान्वयन, तथा

   (ख) चयनित गांवों की विशेष रूप से अभिज्ञात विकासात्मक अपेक्षाएं जो केन्द्र तथा राज्य सरकारों की मौजूदा योजनाओं के अंतर्गत पूरी नहीं की जा सकती, को पूरा करने के लिए पीएमएजीवाई से अन्तराल पूरक निधियां जिनमें (राज्य सरकारें उपयुक्त, विशेष रूप से अनुरूप, अंशदान करती हैं।) 1000 लाख रूपए प्रति गांव की औसत दर से केन्द्रीय सरकार का अंशदान होगा।

2. कार्यात्मक क्षेत्र संबंधी संघटक: कार्यात्मक क्षेत्र संबंधी संघटक, अन्य बातों के साथ-साथ इसकी योजना और कार्यान्वयन के लिए प्रशासनिक मशीनरी को सुदृढ़ करने, मुख्य कार्मिकों का क्षमता निर्माण, उपयुक्त प्रबंधन सूचना प्रणाली आदि तैयार करके इस योजना के कार्यान्वयन को सुकर बनाने के लिए है। इस संघटक के लिए राज्य सरकार प्रादेशिक क्षेत्र संबंधी संघटक के लिए किए गए परिव्यय के 6% तक केन्द्रीय सहायता के लिए पात्र होगी।

चल रही योजनाओं का अभिसारी कार्यान्वयन: क्रियाविधि

प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना ग्रामों में चल रही केन्द्रीय और राज्य योजना स्कीमों का अभिसारी कार्यान्वयन, निम्नलिखित उपायों द्वारा किया जाएगा:-

(i) पीएमजीवाई ग्रामों के विकास हेतु संगत सभी केन्द्रीय एवं राज्य योजना स्कीमों का व्यवस्थित सूचीकरण।

(ii) पीएमएजीवाई की आयोजना, कार्यान्वयन एवं मॉनीटरिंग के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों और निकायों द्वारा उपरोक्त सभी स्कीमों की कुल विशेषताओं की स्पष्ट समझ और इस उद्देश्य के लिए आवश्यक क्षमता निर्माण।

(iii) (क) ग्राम की जरूरतों और (ख) उन स्कीमों जिनका उपयोग उन जरूरतों और उस आधार पर ग्राम विकास योजनाओं की तैयारी के लिए किया जा सके, की पहचान करना।

(iv) जिला पंचायत द्वारा अनुमोदित ग्राम विकास योजनाओं और ऐसे ग्रामों में स्कीमों के समयबद्ध कार्यान्वयन के अनुसार पीएमएजीवाई ग्रामों (और संबंधित जिलों) के लिए पहचान की गई स्कीमों के अंतर्गत पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराने के लिए राज्य सरकार द्वारा सभी संबंधित विभागों को स्पष्ट निर्देश।

(v) उपरोक्त स्कीमों के लिए जिम्मेदार विभागों के पदधारियों को उस विस्तार तक जितना पहले नहीं था, एक जिला पंचायत के नियंत्रण में रखा जा रहा है, ताकि वे जिला पंचायत द्वारा अनुमोदित ग्राम विकास योजना के अनुसार स्कीमों का कार्यान्वयन करें। इसके अतिरिक्त वे उपयुक्त निम्न स्तर के अपने पदधारियों को संबंधित ब्लॉक और ग्राम पंचायतों के लिए जवाबदेह बनाएं।

(vi) ग्राम, ब्लॉक और जिला पंचायतों तथा राज्य सरकार द्वारा अभिसारी कार्यान्वयन प्रक्रिया का प्रभावी समन्वयन, मॉनीटरिंग एवं पर्यवेक्षण।

अन्य बातों के साथ-साथ उपरोक्त के लिए राज्य सरकार द्वारा संबंधित विभागों को आदेश देना अपेक्षित है।

i. उन्हें जिला पंचायत के अधीन रखना तथा

ii. जिला पंचायत द्वारा अनुमोदित ग्राम विकास योजना के अनुसार वरीयता पर पीएमएजीवाई गांवों को उनकी योजनाओं के अंतर्गत यथा संभव संसाधन आवंटित करना।

इसके अतिरिक्त, अभिसारी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है:-

i. राज्य तथा जिला स्तरीय तकनीकी संसाधन सहायता एजेंसी द्वारा जिला ब्लॉक तथा ग्राम पंचायत का क्षमता निर्माण।

ii. पीएमएजीवाई के अंतर्गत नामित जिला, ब्लॉक तथा पंचायत समन्वय कर्ताओं को उपयुक्त प्रशिक्षण प्रदान करना।

iii. प्रत्येक पीएमएजीवाई गांवों के लिए ब्लॉक पंचायत द्वारा उपयुक्त ब्लॉक स्तरीय अधिकारी को नामांकन करना जो जिला पंचायत के अनुमोदन के पश्चात् ग्राम विकास योजना की तैयारी तथा इसके कार्यान्वयन की सक्रिय निगरानी करेगा।

समीक्षा

स्कीम के अंतर्गत कार्य-निष्पादन की समीक्षा, समय-समय पर केन्द्र स्तरीय और राज्य स्तरीय संचालन-सह-मॉनीटरिंग समितियों द्वारा की जाएगी। जहां तक संभव होगा, वैश्विक अवस्थिति प्रणाली (जीपीएस) आधारित मॉनीटरिंग का भी प्रयोग किया जाएगा।

प्राथमिकता क्षेत्र ऋण योजना और विभेदी ब्याज दर योजना के अंतर्गत पीएमएजीवाई ग्रामों के लिए क्रेडिट के प्रवाह की विभिन्न स्तरों पर मॉनीटरिंग निम्नलिखित विद्यमान समितियों/एजेंसियों द्वारा की जाएगी:-

i) राज्य स्तरीय बैंकर्स समिति

ii) बैंकों की जिला स्तरीय समन्वय समिति और जिला के अग्रणी बैंक।

iii) ब्लॉक स्तरीय बैंकर्स समिति।

सामाजिक लेखा-परीक्षा

यह उम्मीद की जाती है ग्राम सभा, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 की धारा 17 के अंतर्गत, जैसा इसके द्वारा किया जाना अपेक्षित है, के तर्ज पर पीएमएजीवाई की सामाजिक लेखा-परीक्षा शुरू करेगी।

प्रगति रिपोर्टों का प्रस्तुतीकरण

ग्राम योजनाओं के अंतर्गत शुरू किए जाने हेतु परिकल्पित कार्यकलापों के पूर्ण होने पर राज्य सरकारों द्वारा तिमाही और वार्षिक प्रगति रिपोर्टों को निर्धारित प्रारूप में प्रस्तुत करना अपेक्षित है। इस उद्देश्य के लिए प्रारूप विकसित किया जाएगा और इसे यथा समय राज्य सरकारों को परिचालित कर दिया जाएगा।

(विशेष जानकारी मंत्रालय के वेबसाइट www.socialjustice.nic.in पर)

दलित आत्मकथाओं का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

■अनुरुद्ध सिंह

एरिक हाब्स बाम ने बीसवीं सदी का जो इतिहास लिखा है उसका अंत इस प्रकार किया है– “अगर मनुष्यता को अपना साफ सुथरा भविष्य बनाना है तो वह अतीत या वर्तमान को ढोने या कायम रखने से नहीं होगा। उसे इस समाज को बदलना होगा अन्यथा अंधकार ही सामने होगा।” इसी प्रकार दलित आत्मकथाएं अपने हजारों वर्ष के शोषण के इतिहास को लिखकर समाज में व्याप्त असमानता की खाई को पाटने का कार्य कर रही हैं। दलित आत्मकथाएं सामाजिक अंधकार को खत्म कर एक समता–स्वतंत्रता, बंधुता और करुणा पूर्ण समाज बनाने पर जोर दे रही हैं। समाजशास्त्रीय पहलुओं को यदि ध्यान में रखकर देखा जाए तो समूचा दलित समाज अपनी जीवटता के कारण हजारों साल से जूझता रहा है। हिंदू धर्मग्रंथों में चांडाल, अस्पृश्य अंत: वासिन, अंत्यज, पंचम, डोम आदि को मानवीय गरिमा से बाहर रखा गया। उनकी तुलना कुत्तों और अन्य जानवरों से की गयी। मानवीय अधिकारों से प्रताड़ित करके दलितों के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगाए गए। ऐसा है, हमारा समाज जहाँ पर दलितों को मनुष्य के रूप में न देखकर जानवर से भी बदतर रूप में देखा जाता है। यदि समाज में व्याप्त यह असमानता की खाई लंबे समय तक बनी रही तब वह मनुष्यता के लिए खतरनाक साबित होगी।

हिंदी दलित आत्मकथाओं की महत्ता वैश्विक साहित्य के परिदृश्य में अद्वितीय है। डॉ. राम चंद्र के शब्दों में– “आत्मकथा लिखने के लिए साहस और ईमानदारी होनी चाहिए, रचनाशीलता का अपना खुद का तेवर होना चाहिए– ये सारी चीजें एक दलित आत्मकथा में विद्यमान है। समाज की कुरीतियों और खौफनाक चेहरे को उजागर करने के लिए आत्मकथा के अलावा और कोई प्रामाणिक माध्यम नहीं हो सकता। दलित आत्मकथाओं ने समाज के ‘एलिट वर्ग’ के चिंतन को झकझोर दिया है। व्यवस्था के चरमराने और वर्चस्व के टूटने का खतरा पैदा हो गया है। बेशक हिन्दी दलित आत्मकथायें उपरोक्त मानदण्डों पर खरी उतरती हैं।”

हिन्दी दलित आत्मकथाओं जैसे कि– ‘जूठन’, ‘मुर्दहिया’, ‘अपने–अपने पिंजरे’, ‘दोहरा अभिशाप’, ‘तिरस्कृत’ और ‘मेरा बचपन मेरे कंधों पर’ के माध्यम से समाज के स्वरूप एवं सरोकार को देखने का प्रयास किया गया है। इन हिन्दी दलित आत्मकथाओं में दलित लेखकों ने यह दिखाने का भी प्रयास किया है कि कैसे समाज के लोग तिरस्कार, अपमान, घृणा, द्वेष भरे इस जीवन में आर्थिक विपन्नता मनुष्य से उसके मनुष्यत्व को छीन लेती है। इन हिंदी दलित आत्मकथाओं में निम्नलिखित सवालों की भी जाँच पड़ताल की गयी हैं। जैसे कि हिन्दी दलित आत्मकथाओं का केन्द्रीय विषय–वस्तु क्या है? इन दलित आत्मकथाओं का स्वभाव या मिज़ाज क्या है? इन दलित आत्मकथाओं की समस्यायें क्या हैं? इन समस्याओं की जड़े कहाँ है? तथा आखिरी सवाल यह है कि हिन्दी दलित आत्मकथाओं के सरोकार क्या हैं?

हिन्दी का दलित साहित्य ज्योतिबा फुले और बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को ही मानता है और कहीं न कहीं वह अपनी परंपरा और पहचान को मराठी के दलित साहित्य से जोड़ता है यह गलत भी नहीं है क्योंकि महाराष्ट्र में सन् 1960–65 के समय ही दलित साहित्य आंदोलन की शुरूआत हुई थी। इसके बाद ही हिन्दी का दलित साहित्य, हिन्दी साहित्य के इतिहास के एक खास दौर–1980 और 1990 के दशक में उभरा एक साहित्यिक आंदोलन है जिसमें दलित लेखक–कवि आत्म–सजगता के साथ आगे आए और अपने साहित्य को स्थापित करने की कोशिश की। अपनी रचनाओं में उन्होंने अपनी जाति के साथ होने वाले भेद–भावों और जुल्मों को दिखाया।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं जैसे कि– ‘जूठन’, ‘मुर्दहिया’, ‘अपने–अपने पिंजरे’, ‘दोहरा अभिशाप’, ‘तिरस्कृत’ और ‘मेरा बचपन मेरे कंधों पर’ के माध्यम से समाज के स्वरूप एवं सरोकार को देखने का प्रयास किया गया है।

आज दलित साहित्य, हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में हमारे समक्ष है। दलित रचनाकार कहानी, कविता, उपन्यास और आत्मकथाओं में भोगे हुए अपने यथार्थ को शब्द बद्ध कर रहे हैं। एक दलित रचनाकार जीवन के उन कटु अनुभवों से गुजरता है, और रचनात्मक अभिव्यक्ति देना अत्यन्त कठिन है। हिंदी दलित आत्मकथायें दलित साहित्य की सशक्त विधा के रूप में आज दलित जीवन की त्रासदी को सामने ला रही है। हिन्दी दलित साहित्य में लगभग एक दर्जन से अधिक दलित आत्मकथायें लिखी जा चुकी है जो निम्नलिखित है-

प्रो. श्यामलाल	एक भंगी कुलपति की कहानी	2004
रमाशंकर आर्य	घुटन	2005
सूरजपाल चौहान	संतप्त	2006
नवेन्दु महर्षि	इंसान से ईश्वर तक-1	2006
नवेन्दु महर्षि	मेरे मन की बाइबिल-2	2007
डॉ. धर्मवीर	मेरी पत्नी और भेड़िया	2009
डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन	मेरा बचपन मेरे कंधों पर	2009
डॉ. तुलसीराम	मुर्दहिया	2010
नवेन्दु महर्षि	रूकी हुयी रोशनी-3	2011
सुशीला टाकभौरे	शिकंजे का दर्द	2011
डॉ. तुलसीराम	मणिकर्णिका (मुर्दहिया-2)	जारी 2014

ये सभी हिन्दी दलित आत्मकथायें दलित जीवन के सरोकारों को समेटती हुई भारतीय जाति व्यवस्था और हिन्दू धर्म जन्म सिद्धांत पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। ये आत्मकथायें दलितों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक शोषण के विरोध में अपनी आवाजें बुलंद करते हुए शोषक वर्ग को अंतर्मुखी होकर सोचने के लिए बाध्य करती हैं। इन दलित आत्मकथाओं को पढ़कर यह ज्ञात होता है कि समाज का एक वर्ग या हिस्सा ऐसा भी है जो अपमान, अवहेलना तथा दरिद्रता युक्त जीवन जीने के लिए बाध्य है। दलित लेखक आज अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से सदियों तक सुख-सुविधा तथा संपत्ति से युक्त अभिजात्य वर्ग की मानसिकता तथा उनकी साजिशों को उजागर करती है। इन आत्मकथाओं ने पुनः एक बार फिर से धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की पड़ताल करने पर जोर दिया है। हिन्दी दलित आत्मकथाओं में वेदना, पीड़ा और विद्रोह इन तीनों का ही मुखर रूप दिखाई देता है।

हिन्दी की दलित आत्मकथाओं और परंपरागत आत्मकथाओं में अंतर तथा उनकी विशिष्टताओं को देख सकते हैं। सर्वप्रथम परंपरागत आत्मकथाओं की विशेषताओं को देख सकते हैं जो निम्नलिखित है-

(1) आत्मकथा का लेखक कोई सामान्य मनुष्य नहीं होता बल्कि वह एक विशिष्ट और प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है। पुराना मिथक यही कहता है कि समाज में प्रतिष्ठित मनुष्य ही अपनी आत्मकथा लिख सकता है। सामान्य मनुष्य अपनी आत्मकथा लिख ही नहीं सकता था इसलिए जीवनी और आत्मकथायें महापुरुषों की होती थी।

(2) आत्मकथा व्यक्ति केंद्रित होती है। आत्मकथायें व्यक्ति विशेष के द्वारा जीवन के अंतिम दिनों में लिखी जाती थी। उनमें व्यक्ति के काल-क्रमबद्ध जीवन और उसकी सफलताओं और उपलब्धियों का ही लेखा-जोखा अधिक रहता है।

(3) आत्मकथा समाज-केन्द्रित न होकर व्यक्ति केन्द्रित होती है। आत्मकथा का लेखक जीवनानुभवों द्वारा अर्जित अनुभूतियों को सामाजिक सम्बंधों में देखने की कोशिश तो जरूर करता है पर भारत की विशेष सामाजिक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति केन्द्रित होकर सोचने लगता है।

(4) 'परंपरागत आत्मकथाओं में आत्म-आलोचना का पूर्णतया अभाव होता है इसलिए उनमें आत्मश्लाघा (आत्म प्रशंसा) की प्रधानता रहती है जिसे आत्मछलना कहना ज्यादा सही होगा।'

हिन्दी दलित आत्मकथाओं की निम्नलिखित विशेषतायें हैं। अपेक्षा पत्रिका के सम्पादक डॉ. तेज सिंह 'हिंदी में प्रकाशित दलित आत्मकथाओं को अम्बेडकरवादी आत्मवृत्त कहते हैं।'

(1) परंपरागत आत्मकथाओं और हिन्दी दलित आत्मकथाओं में अंतर यह है कि परंपरागत आत्मकथायें व्यक्ति केन्द्रित होती है जबकि दलित आत्मकथायें समाज केन्द्रित होती हैं।

(2) हिन्दी दलित आत्मकथाओं में कल्पना का समावेश नहीं होता है। बल्कि उनमें भोगे हुये जीवन के यथार्थ का समावेश होता है। हिन्दी दलित आत्मकथायें व्यक्ति जीवन से सामाजिक जीवन की ओर उन्मुख होती हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत अनुभव सामाजिक अनुभव बनकर अभिव्यक्ति पाते हैं जो अंततः प्रामाणिक अनुभूति में तब्दील हो जाते हैं।

(3) हिंदी दलित आत्मकथायें एक व्यक्ति के माध्यम से अपने समुदाय और समाज की कथा-व्यथा को प्रस्तुत करती हैं। लेकिन उनमें व्यक्ति की विशिष्टताओं का पूर्णतया लोप नहीं होता है बल्कि वे अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ अपने समुदाय और समाज का जीवंत चित्र उपस्थित करते हैं क्योंकि बहुजन समाज में एक नहीं विभिन्न समुदाय है।

(4) हिन्दी दलित आत्मकथाओं के लेखकों के अनुभव भले ही अलग-अलग हों लेकिन उनकी अनुभूतियों में समानता है। इन लेखकों की अनुभूतियों में समानता इसलिए है कि वे सभी लेखक जातिप्रथा से समान रूप से कम या अधिक पीड़ित हैं। जातिप्रथा केवल मानसिक संकल्पना ही नहीं है बल्कि वह एक सामाजिक-आर्थिक संरचना भी है।

(5) हिन्दी दलित आत्मकथाओं में लेखकों का विरोध समाज के किसी व्यक्ति विशेष से नहीं होता है बल्कि समाज की ब्राह्मणवादी विचारधारा से होता है। हिन्दी

दलित आत्मकथायें बाबासाहेब अम्बेडकर के विचार और दर्शन से प्रेरित हैं। यह विचार और दर्शन ही हिन्दी दलित आत्मकथाओं का मजबूत पक्ष है।

(6) हिन्दी दलित आत्मकथाओं के लेखकों के सामने प्रश्न व्यक्ति का नहीं होता बल्कि उनके सामने अपनी सांस्कृतिक परम्परा और सामाजिक-अस्मिता की तलाश का सवाल ही मूल सवाल होता है।

(7) हिन्दी दलित आत्मकथाओं के लेखकों को अपनी लेखन प्रक्रिया में दोहरी मानसिक यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है। पहला सामाजिक स्तर पर और दूसरा लेखन के स्तर पर। इस मानसिक यंत्रणा को अपनी आत्मकथा 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने बहुत ही संजीदगी से बयां किया है। वे लिखते हैं- "इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। एक लंबी जद्दोजहद के बाद, मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं से एक बार फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगी। स्वयं को परत-दर-परत उधेड़ते हुए कई बार लगा कितना दुखदायी है यह सब। कुछ लोगों को यह अविश्वसनीय और अतिरंजनापूर्ण लगता है।" लेकिन परंपरागत लेखकों को इस तरह की किसी भी मानसिक यंत्रणा से गुजरना नहीं पड़ता है।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि समाज के जिस विद्रूप, वीभत्स, क्रूर और अमानवीय चेहरे पर गैर दलित रचनाकार पर्दा डालते आए थे और समाज जिस सच से सामना नहीं करना चाहता था, इन दलित आत्मकथाओं ने समाज के उस नग्न सच को उकेरने का कार्य किया है। अर्थात् दलित आत्मकथाओं ने हजारों वर्ष के शोषित इतिहास को समाज से परिचित कराने का भी कार्य किया है। हिन्दी दलित आत्मकथायें कई सारे सवालों को हमारे सामने लाती है। पहला सवाल है हम किस प्रकार के समाज में रहते हैं? दूसरा सवाल है हमारे समाज की व्यवस्था कैसी है? तीसरा सवाल यह है कि दलित व्यक्ति ने अपने व्यक्तिगत जीवन में जाति की पीड़ा के दंश को कैसे महसूस किया है? हिन्दी दलित आत्मकथाओं को पढ़ते समय ये सारे सवाल हमारे जेहन में आने लगते हैं।

> **हिन्दी दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि समाज के जिस विद्रूप, वीभत्स, क्रूर और अमानवीय चेहरे पर गैर-दलित रचनाकार पर्दा डालते आए थे और समाज जिस सच से सामना नहीं करना चाहता था, इन दलित आत्मकथाओं ने समाज के उस नग्न सच को उकेरने का कार्य किया है। अर्थात् दलित आत्मकथाओं ने हजारों वर्ष के शोषित इतिहास को समाज से परिचित कराने का भी कार्य किया है। हिन्दी दलित आत्मकथायें कई सारे सवालों को हमारे सामने लाती हैं। पहला सवाल है हम किस प्रकार के समाज में रहते हैं? दूसरा सवाल है हमारे समाज की व्यवस्था कैसी है? तीसरा सवाल यह है कि दलित व्यक्ति ने अपने व्यक्तिगत जीवन में जाति की पीड़ा के दंश को कैसे महसूस किया है? हिन्दी दलित आत्मकथाओं को पढ़ते समय ये सारे सवाल हमारे जेहन में आने लगते हैं।**

हिन्दी दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में, मैं अपनी बात भारत की संविधान उद्देशिका के माध्यम से रखना चाहता हूँ। संविधान की उद्देशिका में लिखा है- "हम भारत के लोग भारत को संपूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता। प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए। तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

इस उद्देशिका को संविधान की आत्मा कहा जाता है। हिन्दी दलित आत्मकथाओं को पढ़ने पर पता लगता है कि आज़ादी के पैंसठ साल के बाद भी न तो भारत के समाज के कुछ वर्ग को न्याय मिला है, न ही स्वतंत्रता मिली है, न ही समता प्राप्त है और न ही समाज के कुछ

वर्ग को गरिमामय जीवन मिला है। यहाँ तक कि व्यक्ति की जो बुनियादी आवश्यकतायें हैं रोटी, कपड़ा और मकान वह भी भारत के समाज के कुछ वर्ग को नहीं मिली हैं। अर्थात् हिन्दी दलित आत्मकथायें संविधान की सच्चाई को बयां करती हुयी नजर आती हैं। संविधान में यह भी लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है और शिक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार के तहत आता है। लेकिन हिन्दी दलित आत्मकथाओं में उल्लेख मिलता है कि कुछ विशेष वर्ग के लोग इसी अधिकार से वंचित रहते हैं। भारतीय समाज में विद्यालय को मंदिर माना जाता है जहाँ से व्यक्ति का निर्माण होता है। लेकिन भारतीय समाज के उच्च वर्ण के लोग समाज की निम्न जाति के व्यक्तियों को विद्यालय जैसे मंदिर में प्रवेश देना ही नहीं चाहते हैं। हिन्दी दलित आत्मकथायें विद्यालय जैसी संस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं तथा सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को ही कटघरे में खड़ा करती हैं।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं के स्वरूप और सरोकार को निम्नलिखित आत्मकथाओं के माध्यम से देख सकते हैं- 'जूठन', 'मुर्दहिया', 'अपने-अपने पिंजरे', 'दोहरा अभिशाप', 'तिरस्कृत', 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर'। इन हिन्दी दलित आत्मकथाओं को पढ़ने से पता लगता है कि सम्पूर्ण दलित समाज अपनी मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान के लिए जद्दोजहद करता नज़र आता है। यदि यह आवश्यकता किसी व्यक्ति की पूरी भी हो जाती है तो वह व्यक्ति समाज में जाति के दंश को ही झेलता रहता है। अर्थात् वह व्यक्ति समाज में अपने अस्तित्व की ही तलाश करता रहता है किंतु अंत तक उसे समाज में अपना वजूद दिखायी नहीं देता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में- "क्या इतना काफी नहीं है लिखने के लिए। इस छोटी सी संघर्ष-यात्रा में न जाने कितने दंश हैं जो फांस की तरह गड़े हैं जो कविता-कहानियों में व्यक्त होते हैं। मेरी आंखों के सामने वे दीन-हीन, भूखे-नंगे, गंदे-नालों पर दड़बेनुमा घरों में कीड़े-मकोड़ों की तरह बिलबिलाते, मैला ढोते, खेतों में खटते लोग हैं जो मात्र आर्थिक दबावों में ही नहीं सामाजिक उत्पीड़न और भेदभाव में जीने के लिए बाध्य हैं। ये आदमी की तरह जीना चाहते हैं, और मेरे लिखने का कारण बनते हैं।" दलित चेतना सामाजिक बराबरी और आत्मसम्मान के सवाल को केन्द्र में रखती है, न कि आर्थिक बराबरी और राजनीतिक क्रांति को। यह बुनियादी बात दलित कवि कंवल भारती की इन पंक्तियों से भी जाहिर है-

''गरीबी नहीं सामाजिक बेइज्जती अखरती है।''

('तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती' कविता संग्रह)

जिनके अतीत सुखों की सीमा अनन्त हो और अनन्त अतीत सुख हो, तो क्यों न अपने अतीत के प्रति सम्मोहित होंगे? दूसरी तरफ जिनका बचपन कागज की कश्ती बनाने की बजाय जातीय अपमान और भूख से लड़ने में बीता हो, जिन्हें या तो खेलने का अवसर ही न मिला हो या फिर खेल में भी घोड़ा बनकर कोड़े खाये हों, वे अपने बचपन को किस रूप में याद करेंगे? इसका पता दलित आत्मकथाओं से मिल जाता है। हिंदी दलित आत्मकथाओं के लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि, तुलसीराम, मोहनदास नैमिशराय, कौसल्या बैसंत्री, सूरजपाल चौहान, श्यौराज सिंह बेचैन सभी के बचपन में एक समानता है कि ये सभी लेखक उनके सहोदर अपने उस बचपन को पुन: जीने की कामना तो दूर बल्कि अपने बचपन को पीड़ादायक के रूप में याद करते हैं।

ओमप्रकाश बाल्मीकि की परिस्थितियाँ बहुत ही जटिल रही हैं। दिन-रात मर-खपकर भी इनके पसीने की कीमत मात्र जूठन है। ओमप्रकाश बाल्मीकि 'जूठन' में लिखते हैं- "शादी ब्याह के मौकों पर, जब मेहमान या बराती खाना खा रहे होते थे तो चुहड़े दरवाजे के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठ जाते थे, बरात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे-खुचे टुकड़े, एक आध मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी-बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछें खिल जाती थीं। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी।" इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं- "पत्तलों से जो पूरियों के टुकड़े एकत्र होते थे उन्हें धूप में सुखा लिया जाता था। चारपाई पर कोई कपड़ा डालकर उन्हें फैला दिया जाता था। अक्सर मुझे पहरे पर बैठाया जाता था। क्योंकि सूखने वाली पूरियों पर कव्वे, मुर्गियाँ, कुत्ते अक्सर टूट पड़ते थे।... ये सूखी पूरियाँ बरसात के कठिन दिनों में बहुत काम आती थीं। इन्हें पानी में भिगोकर उबाल लिया जाता था। उबली हुई पूरियों पर बारीक मिर्च और नमक डालकर खाने में मजा आता था। कभी-कभी गुड़ डालकर लुगदी जैसा बन जाता था, जिसे बहुत चाव से खाते थे।" इन सब बातों के बारे में सोचता हूँ तो मन में अकुलाहट सी पैदा हो जाती है। कैसा जीवन था? खाने के लिए इतना बड़ा संघर्ष, शायद ही उच्च जाति के किसी व्यक्ति को करना पड़े।

तुलसीराम के यहाँ जूठन ही नहीं बल्कि मरे हुए पशुओं (गाय, बैल या भैंस) का मांस खाया जाता था। यह मांस ही उनके पेट भरने का साधन था। तुलसीराम आत्मकथा 'मुर्दहिया' में लिखते हैं- "एक ऐसे ही संस्मरण में दादी ने बताया कि जब वह ब्याह कर हमारे गांव आई तो देखा कि गांव में किसी की गाय, भैंस या बैल मर जाता तो पास स्थित जंगल में ले जाकर उसका चमड़ा निकाला जाता फिर उसके गंड़ासे और कुल्हाड़ियों से काट-काटकर उसका मांस सारे दलित बांस से बनी हुयी टोकरियों में भरकर घर लाते। मांस काटने का काम प्राय: महिलायें करती थीं।....

दादी मांस के कुछ हिस्सों को आवश्यकतानुसार तुरंत पकाती किंतु अधिकांश बचे हुए कच्चे मांस को कई दिन तक तेज धूप में सुखाती। खूब सूख जाने पर मांस को कच्ची मिट्टी से बनी कोठिली में रखकर बंद कर देती। इस प्रक्रिया से सूखे मांस का भण्डारण बढ़ता जाता और साल के उन महीनों में जब खाने की वस्तुओं का टोटा पड़ जाता तो सूखे मांस को नए तरीके से पका-पकाकर परिवार के लोग अपना भेट भरते।" कितनी विडम्बनात्मक स्थिति है समाज की, कुछ लोगों को अपना जीवन निर्वहन करने के लिए रोटी की जगह गाय, बैल, भैंस के मांस को सुखाकर खाना पड़ता है।

मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में भोजन से जुड़ा एक प्रसंग है। जिसका विस्तार मोहनदास नैमिशराय ने कई पेज़ तक किया है। भोजन के प्रसंग के आरम्भ में ही वे लिखते हैं- "शादी ब्याह के दिनों में हमारे चेहरे खुशी से चमकने लगते थे। यह सोचकर कि भर पेट खाने को तो मिलेगा। हम उस दिन की कई-कई हफ्तों से प्रतीक्षा किया करते थे। मैं माँ से बार-बार पूछता- "फलाने के घर का कब ब्याह है, ढिकाने के यहाँ कब?" जिस दिन शादी ब्याह होता, उस दिन शाम होने से पहले कोई एक आदमी घर-घर में जाकर ऊँची आवाज में नौंत करता।" इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं- "खाने की कुछ चीजें बच जाती थी। तब बची हुई चीजें घर-घर जाकर बांटनी पड़ती थीं। पूरियां तो हम कई-कई दिनों तक चाव से खाते थे। हाँ सब्जी एक दो दिन ही चला पाते थे। पर छुआरे की चटनी तो दस-दस दिन तक चलती थी। वह हमारे लिए सब्जी का विकल्प बन जाती। हम चटनी को थोड़ा-थोड़ा कर सब्जी के रूप में ही इस्तेमाल करते थे।" मोहनदास नैमिशराय के लिए शादी एक खुशी का माहौल नहीं बल्कि भरपेट खाने के लिए खुशी थी। जिस व्यक्ति को कभी भरपेट खाना ही न मिला हो, उसके लिए शादी और त्योहारों का उत्सव बेकार है। मोहनदास नैमिशराय का जीवन शहर में ही अधिक बीता है। शहर में भी खाने की समस्या उतनी ही है जितनी गांवों में विद्यमान है।

आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में कौसल्या बैसंत्री स्कूल में अपने खाने की सामग्री की तुलना ब्राह्मण लड़कियों से करती हुयी लिखती हैं- "वे टिफिन बॉक्स (पीतल के) में खाना लेकर आती थी। कभी उसमें पूरियां, कभी पराठे, कभी पोहे, कभी सूजी का हलवा कभी पकवान रहता था। सफेद रोटियां जिसमें घी लगा रहता था। सब्जी या आचार के साथ खाती थीं। मेरे घर में तो कभी-कभी ही रोटियां बनती थीं, वह भी घटिया गेहूं की, न उनमें घी लगा होता था न आचार। कभी-कभार ही मैं चीनी या गुड़ के साथ रोटियां लाती थी। मेरे पास अच्छा डिब्बा भी नहीं था। मैं एल्युमिनियम के डिब्बे में खाना लाती थी। मैं लड़कियों के सामने अपना डिब्बा भी नहीं खोलती थी। मुझे अपना घटिया डिब्बा और घटिया रोटी को उनके सामने खोलने में शर्म आती थी। मैं दीवार की ओर मुंह करके खाना खाती थी ताकि कोई देख न ले। उनके खाने की खुश्बू और खाना देखकर ललच जाती थी। सोचती थी ऐसा खाना मुझे कब नसीब होगा।" कौसल्या बैसंत्री के माता-पिता शहर में रहते थे। शहर में भी दलितों की यही स्थिति है कि वे लोग जिंदा रह सके, इससे अधिक नहीं। यह समाज की कैसी व्यवस्था है? जहाँ कमर तोड़ मेहनत के बावजूद व्यक्ति भरपेट भोजन नहीं जुटा पाता है।

सूरजपाल चौहान की आत्मकथा 'तिरस्कृत' में भी प्रसंग है जहाँ उन्हें खाने के लिए कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सूरजपाल चौहान लिखते हैं- "गाँव के राधे लोधे की लड़की के विवाह में उस दिन मैं ही माँ के साथ जूठन उठाने गया था। मैं मन ही मन बहुत खुश था कि आज माँ के साथ जूठन उठाने जा रहा हूँ। माँ ने डलिया और एक खाली मटकी अपने हाथों में उठा ली और मुझे खाली बाल्टी पकड़ा दी। चलते-चलते माँ ने मुझे एक कोने में रखे डंडे को भी उठाने को कहा।" इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं- "मैं खाना-खाते बरातियों को टुकुर-टुकुर देखे जा रहा था। मेरे मुंह में जैसे लार टपकने वाली थी।... पंगत में से एक आदमी खाना खा चुका था। वह अपनी पत्तल उठाए हमारी ओर बढ़ चला आ रहा था। माँ टोकरी व मटकी लिये तैयार बैठी थी। जैसे ही उस आदमी ने अपनी जूठी पत्तल और दही-बूरे भोलुआ डलिया के पास रखा कि पलक झपकते ही एक कुत्ता पत्तल से पूरी के टुकड़े मुंह में दबाए चलता बना। माँ भोलुए में से बुरे मिली झूठी दही मटकी में उंगली से पोंछ-पोंछ कर डाल रही थी। जब उसका ध्यान पत्तल पर मुंह मारते हुए कुत्ते पर गया तो वह आंख दिखाते हुए मुझसे बोली- "कढ़ी खाए, कुत्ता आँखिन के सामने से पूरी उठाए कैं लै गयौ और तू देखत रहयौ....तौये डंडा नाय मारौ गयौ।" जूठन उठाने का मेरा यह पहला अनुभव था।" कुत्तों का गुर्राना उचित था, क्योंकि वे लोग उनके हिस्से का माल समेट रहे थे। सूरजपाल चौहान को इतनी समझ नहीं थी कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसी समझ तब आती है जब पेट भरा हो। स्वाभिमान की बातें भी तभी सूझती है। लेकिन जब रूखे-सूखे निवालों के भी लाले पड़े हों और आदमी-आदमी के हाथों में नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हो, तब वह स्वयं में और पशुओं में अंतर नहीं कर पाता है। लगभग ऐसी ही स्थिति सूरजपाल चौहान की थी।

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में भोजन की भयावह समस्या दिखाई देती है। श्यौराज सिंह बेचैन को भोजन के रूप में मैली खाने को मिलती थी। गन्ने के रस का त्यागा हुआ जो भाग होता था उसे मैली कहते हैं। श्यौराज सिंह बेचैन लिखते हैं-

"मैली के कुछ अंश में रस चला जाता था। थोड़ा पानी मिलाकर घर में हम उसे किसी परात या तसले में छानते तो पहले तो एक दो गिलास ऐसे ही पी जाते फिर थोड़ा बहुत अन्न डालकर पका लेते। कभी बाजरा डाल दिया तो कभी मक्का, चावल डालने का अवसर तो जश्न जैसा होता था, अभावों के दिनों में इस थोड़े से में भी स्वाद था और संतोष मजबूरी मिश्रित था। हमारे चमरियाने में हमारा घर ही ऐसी मजबूरी में था।" श्यौराज सिंह बेचैन का जीवन संघर्षपूर्ण रहा। जिस मैली को खाने के लिए कुत्तों-सुअरों या बैल-भैंसों को दी जाती थी। इस मैली को श्यौराज सिंह बेचैन ने खाया है। हम देख सकते हैं कि हमारा दलित समाज जानवर से भी बदतर जिंदगी जीने के लिए विवश है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में "पढ़ाई के साथ रोटी का सवाल मेरे लिए सर्वोपरि था। पढ़ाई अधूरी छोड़कर आईलैंस फैक्टरी प्रशिक्षण संस्थान जबलपुर और फिर अम्बरनाथ (बंबई) से तकनीकी शिक्षा की जो आज भी मेरी जीविका का साधन है।" जिंदा रहने के लिए मनुष्य की पहली आवश्यकता रोटी है। रोटी के बिना मनुष्य रूप में उसका जीवन निर्वहन संभव नहीं है। सर्वप्रथम समाज के सभी मनुष्यों का पहला संघर्ष भोजन ही है। इन सभी हिन्दी दलित आत्मकथाओं में दलित लेखक अपनी बाल्यावस्था से ही रोटी के लिए ही संघर्ष करते हुए नजर आते हैं।

समाज के सभी मनुष्यों के जीवन की दूसरी बुनियादी आवश्यकता कपड़े की है। हिन्दी दलित आत्मकथाओं में दलित लेखक कपड़े की समस्या से जद्दोजहद करते हुए नजर आते हैं। इस समस्या का चित्रण हिन्दी दलित आत्मकथाओं में दलित लेखकों ने बड़ी ही बेबाकी से किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि आत्मकथा 'जूठन' में लिखते हैं- "त्यागी लड़कों के कलफ लगे, ताजा धुले कपड़ों को देखकर मैं हमेशा सोचता था कि मैं भी ऐसे ही कपड़े पहनकर स्कूल जाऊँ। कभी-कभी तो त्यागियों के घर से मिली उतरन पहननी पड़ती थी। उन कपड़ों को देखकर लड़के चिढ़ाते थे। लेकिन यह उतरन भी हमारी बेबसी को ढक नहीं पाती थी।" इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं- "उन दिनों मेरे पास कॉलेज जाने लायक कपड़े भी न थे। गाँव में तो गंदी, बिना इस्त्री की हुयी कमीज और फटे पजामे से ही काम चलता था। यहाँ सब पैंट-कमीज पहनते थे। जसवीर के पास एक पुरानी पैंट थी काफी ढीली थी मेरे नाप से। उसे पहनकर मैं कॉलेज जाता था।"

तुलसीराम का परिवार संयुक्त परिवार बहुत बड़ा था। संयुक्त परिवार होने के कारण आर्थिक अभाव के चलते उनके घर में जाड़े के दिनों में कम्बल या रजाई नहीं रहती थी। तुलसीराम जाड़े के दिनों की स्थिति का चित्रण करते हुए आत्मकथा 'मुर्दहिया' में लिखते हैं- "वैसे भी घर में कपड़ों की कमी हमेशा रहती थी। मेरे पिताजी पूरी धोती कभी नहीं पहनते। वे एक ही धोती के दो टुकड़े करके बारी-बारी से पहनते। हमारे घर में सोने के लिए जाड़े के दिनों में घर की फर्श पर धान का पोरा अर्थात् पुआल बिछा दिया जाता था। उस पर कोई लेवा या गुदड़ी बिछाकर हम धोती ओढ़कर सो जाते। इसके बाद मेरे पिता जी पुनः ढेर सारा पुआल हम लोगों के ऊपर फैला देते। फिर स्वयं सोकर अपने ऊपर भी वैसा ही कर लेते थे।" तुलसीराम उन दिनों को याद करते हैं तो उन्हें ऐसा लगता है कि मुर्दो-सा लेटे हुए हमारे नीचे पुआल, ऊपर भी पुआल और बीच में कफन ओढ़े हम सो नहीं रहे रात भर अपनी-अपनी चिताओं के जलने का इंतजार कर रहे हों।

महीप सिंह के शब्दों में- "उन्होंने अपने जीवन की उन तल्ख और निर्मम सच्चाईयों को इसमें उकेरा है जिनमें मानवीय पीड़ा अपनी पूरी सघनता से व्यक्त हुई है। इसका सबसे बड़ा कारण व्यक्ति के ऊपर सड़ी-गली व्यवस्था का वह आरोपण है जिसके प्रति वह विवश होकर सब कुछ सहते जाने के लिए अभिशप्त रहा है।" मोहनदास नैमिशराय अपनी इन्हीं तल्ख और सच्चाई का वर्णन करते हुए 'अपने-अपने पिंजरे' में लिखते हैं- "कभी-कभी वापसी में गीले कपड़ों में ही लौटते थे। गर्मियों के दिनों में घर तक आते-आते पानी में भीगे कपड़े हवा लगने पर सूख जाते थे। पैंट पहनना तब हमें कहाँ नसीब होता था। अधिक से अधिक हाफ पैंट पहन ली। पांव फिर भी नंगे होते थे....।"

कौसल्या बैसंत्री के माता-पिता शहर के किसी मिल में काम करते थे। महंगाई अधिक होने के कारण वे लोग घर की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते थे। कौसल्या बैसंत्री को अच्छे कपड़े पहनने का मन करता था परंतु घर की हालत खराब होने से मन मारकर रहना पड़ता था। कौसल्या बैसंत्री 'दोहरा अभिशाप' में लिखती हैं- "बाबा को मिल में मशीन साफ करने के लिए कुछ नए कपड़े की पट्टियाँ मिलती थीं। बाबा उनमें से अच्छी-लम्बी पट्टियाँ अलग करके अपनी धोती के नीचे लंगोट की तरह बाँधकर घर लाते थे। उनमें से कुछ सफेद पट्टियों को अलग करके हम पेटीकोट, चड्डियाँ हाथ से सीते थे।... बहुत दिनों तक हम इन पट्टियों को जोड़कर बनाए पेटीकोट-ब्लाउज पहनते रहे। कभी-कभी बहुत सुंदर प्रिंट की पट्टियाँ बाबा लाते थे। उसी के ब्लाउज और बहन के लिए फ्राक सीलकर हमने गुजारा किया था।.... मिल में दो आने गज बैंडेज क्लाथ मिलता था। झिरझिरा कपड़ा होता था पर सस्ता होता था। इसलिए हम उसे मिल की दुकान से खरीदकर सिर्फ काले रंग के ही प्रिंट से दुकान से छपवा कर उसकी साड़ियाँ पहनती थीं।"

सूरजपाल चौहान की आत्मकथा 'तिरस्कृत' का आरम्भ दलित समाज में फैली अशिक्षा, अन्धविश्वास और गरीबी के चित्रण से होता है। लेखक की

पारिवारिक परिवेश पूरे दलित समाज की जीवन शैली है। सूरजपाल चौहान ने तिरस्कृत में एक-एक घटना, स्थिति और परिस्थितियों को बड़ी बारीकी से व्यंजित किया है। जिसमें जीवन की कटु सच्चाईयाँ बोलती हैं। वे लिखते हैं- "आसफ अली रोड पर स्थित गोदरेज भवन के इस एल.आई.सी. के ऑफिस में झाडू और पोचा लगाते-लगाते मेरी कमर दोहरी हो जाती। बस किसी तरह से रो-पीटकर मैंने वहाँ दो महीनें तक काम किया। हाँ, वहाँ से मेहनत का रुपया मिलने पर पिता ने मुझे नए कपड़े सिलवाए थे। कितना अच्छा लगा था। उन दिनों नए और साफ-सुथरे कपड़े पहनकर। उससे पहले पिता अपने ऑफिस से मिली खाकी वर्दी के कपड़ों से ही मुझे कपड़े सिलवाते थे।"

आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' श्यौराज सिंह बेचैन लिखते हैं- "बब्बा की शरीरी नग्नता को ढकने के लिए मेरे पास केवल एक पैबंद लगी फटी कमीज थी। पाजामा वह पहन नहीं पाते। वैसे मेरे पाजामे के नीचे नेकर तक नहीं होता था। इसलिए मैंने कमीज ही उतार कर उन्हें पकड़ा दी। लंगोटी की तरह उन्होंने उसे बाँध कर अपने गुप्त अंगों को ढका था। बब्बा अभी भी कोई लत्ता माँग रहे थे। ऐसा नहीं कि वहाँ किसी के पास अतिरिक्त कपड़ा उपलब्ध न हो। अद्धा या अँगोछा तो मिल ही सकता था। लेकिन संकट यह था कि एक अछूत (चमार) के शरीर से छूने के बाद कपड़ा वापस तो लिया नहीं जा सकता और बेजान होने के पहले कोई वस्त्र दान नहीं किया जा सकता। इस कारण किसी ने उन्हें कोई वस्त्र नहीं दिया था।"

मानव जीवन की तीसरी मूलभूत आवश्यकता मकान की है। 'जूठन', 'मुर्दहिया', 'अपने-अपने पिंजरे', 'दोहरा अभिशाप', 'तिरस्कृत' व 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आत्मकथाओं में मकान की समस्या बहुत ही ज्यादा गम्भीर रूप में दिखायी देती है। इन सभी आत्मकथाओं में बरसात के दिन नर्क से कम नहीं थे। गलियों में कीचड़ भर जाता था, जिससे आना-जाना कठिन हो जाता था। कीचड़ में सुअरों की गंदगी भरी रहती थी, जो बारिश रुकने के बाद गंधियाने लगती थी।

ओमप्रकाश बाल्मीकि अपनी आत्मकथा 'जूठन' में बरसात के समय मकानों की स्थिति का चित्रण करते हैं- "1962 के साल में खूब बारिश हुई थी। बस्ती में सभी के घर कच्ची मिट्टी के बने थे। कई दिन की लगातार बारिश ने मिट्टी के घरों पर कहर बरपा दिया था। हमारा घर जगह-जगह टपकने लगा था। जहाँ टपकता वहीं एक खाली बर्तन रख देते थे। बर्तन में टन-टन की आवाज आने लगती थी। ऐसी रातें जाग-जागकर काटनी पड़ती थी। हर वक्त एक डर बना रहता था कब कोई दीवार धसक जाए।" वे आगे लिखते हैं- "उस रात हमारी बैठक का एक हिस्सा गिर गया था। माँ और पिताजी एक पल के लिए भी नहीं सोए थे। बस्ती में कई मकान गिर गए थे। लोगों के चीखने-चिल्लाने की आवाजें आ रही थीं। पिताजी ने बाहर निकलकर ऊँची आवाज में पूछा था, "मामू.... सब ठीक तो है।" उधर से मामू की आवाज भी इतने ही जोर से आई थी, "ठीक है.... पिछवाड़े की कोठरी गिर गई है।".... सुबह होते ही बस्ती में भगदड़ मच गई थी। हर कोई सुरक्षित जगह की खोज में निकल पड़ा था।"

हिन्दुस्तान के लगभग सभी गाँवों में दलितों की बस्ती हमेशा दक्षिण दिशा में होती है। इसी स्थिति का चित्रण करते हुए तुलसीराम अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में लिखते हैं- "सीवानों से घिरे हमारे धरमपुर गाँव के सबसे ऊपर में अहीर बहुल बस्ती थी जिसमें एक घर कुम्हार, एक घर नोनिया, एक घर गड़ेरिया तथा एक घर गोड़ (भड़भूजा) का था। बीच में बभनौटी (ब्राह्मण टोला) तथा तमाम गाँवों की परम्परा के अनुसार सबसे दक्षिण में हमारी दलित बस्ती। एक हिंदू अंधविश्वास के अनुसार किसी गाँव में दक्षिण दिशा से ही कोई आपदा, बीमारी या महामारी आती है, इसलिए हमेशा गाँवों के दक्षिण में दलितों को बसाया जाता था। अतः मेरे जैसे सभी लोग हमारे गाँव में इन्हीं महामारियों-आपदाओं का प्रथम शिकार होने के लिए ही दक्षिण की दलित बस्ती में पैदा हुए थे।"

गर्मी और बरसात के मौसम के चिपचिपे दिन और उमसभरी रातें दोनों ही दलितों के लिए दुविधा और संकट के होते हैं। उनके लिए दिन और रात एक समान है। जबकि दिन सफेद होते हैं और रातें काली। उनके लिए रंगों का कोई मूल्य नहीं है। उनके तो अपने रंग है अलग हैं जिनके संग जीने-मरने का नाता है। वे रंग गरीबी और अभाव के। वे रंग बीमारी और काम न मिलने की तकलीफ के। दलितों के रंगों की अलग दुनिया है। समाज में पहले भी यह समस्यायें विद्यमान थीं और आज भी हैं। चाहे वह शहर हो या गाँव। शहर और गाँव की बुनियादी सुविधाओं में अंतर केवल उच्च वर्ण के लोगों में आया है। जहाँ पर अमीर-अमीर हो गया है और गरीब-गरीब होता जा रहा है। अतः अमीरी और गरीबी की इस खाई को यदि पाटा नहीं जायेगा तो समाज में आर्थिक विषमता और गहराती जायेगी। इसलिए आर्थिक विषमता को पाटना बहुत जरूरी है।

इन सभी समस्याओं को मोहनदास नैमिशराय अपनी आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में लिखते हैं- "हमारे घरों में नहाने की कोई जगह न थी। घर कच्चे थे और उनकी जमीनें भी। जरा सा पानी पड़ा कि मिट्टी फूल उठती थी। ताई माँ परवाने की गली में नहाती थी। न नल था न बिजली। पंखे-कूलर तो सपने में भी न देखे थे।" वे आगे लिखते हैं- "बरसात आने पर तो और भी परेशानी हो जाती थी। मच्छर, मक्खी, मकड़ी, छिपकली, बिच्छू, कनखजूरे, केंचुए, चूहे, नेवले, सांप सभी एक-एक कर हमारे अगल-बगल होने लगते थे। क्या नहीं था हमारे पास।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन्हीं कच्चे घरों के साथ यह सब खजाना भी हमें मुफ्त में मिल जाता था। जिसमें कमी होने के स्थान पर बढ़ोत्तरी ही होती रहती थी।" इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं- "घर-घर के सामने खुली नालियाँ होती थीं। जिनमें पखाना, मल-मूत्र बहना आम बात थी। उसी के नजदीक मिट्टी के चूल्हें रखे होते थे। जहाँ औरतें सब्जी, दाल बर्तन में चढ़ाती, रोटियां बनाती थीं। वहीं बैठकर हम सब रोटियां खाते थे।" ऐसी है दलित घरों की स्थिति जहाँ खाना रखने के लिए भी अच्छी जगह नहीं है। यदि किसी सवर्ण व्यक्ति को दिखा भी दिया जाये तो उनकी राय बदल जायेगी।

कौसल्या बैसंत्री अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में लिखती हैं- "बस्ती में ज्यादा घर मिट्टी के थे। कुछ घास-फूस की झोंपड़ियाँ भी थीं परंतु बहुत कम। जो थोड़े पैसे वाले थे, उनके मकान ईंट के बने थे। ऐसे घर पूरी बस्ती में पाँच-छः ही होंगे। मिट्टी के घरों पर खपरैल थे। उनमें से बिच्छू कभी-कभी घर में गिरते थे, कभी-कभी काटते भी थे। ज्यादातर महार जाति के अछूत यहाँ रहते थे। कुल दस-पंद्रह घर आंध्र प्रदेश के चमारों के थे और वे बस्ती के एक भाग में रहते थे। करीब तीस-चालीस घर सफाई कर्मचारी के थे और वे बस्ती के एक भाग में रहते थे। माँग (अछूत) जाति के भी लगभग पंद्रह घर थे। कुछ घर आदिवासी गोंड जाति के और दो-चार घर दलित ईसाइयों के भी थे।" कौसल्या बैसंत्री ने दलितों में जितनी जातियां-उपजातियां है उनकी स्थिति का सामाजिक चित्रण किया है। कौसल्या बैसंत्री ने दलितों के साथ-साथ आदिवासी गोंड जाति की स्थिति को भी दिखाया है।

यदि कोई दलित व्यक्ति अपनी विषम परिस्थितियों से निकलना चाहता है तो वह अपने समाज से बाहर नहीं निकल पाता है क्योंकि समाज के उच्च वर्ण के लोग उनकी उन्नति देखना ही नहीं चाहते हैं। उच्च वर्ण व्यक्तियों के मस्तिष्क में एक बात घूमती रहती है कि एक दलित व्यक्ति पक्का मकान कैसे बनवा सकता है? इसी का चित्रण करते हुए सूरजपाल चौहान अपनी आत्मकथा 'तिरस्कृत' में लिखते हैं- "देखो तो सही, कैसा जमाना आ गया है, गाँव के भंगी भी अब पक्का मकान बनाने लगे, घोर कलजुग है कलजुग। लोग इज्जत करना ही भूलते जा रहे हैं।" सूरजपाल चौहान के पिता की मंशा थी कि रिटायर होने के बाद गांव में कच्ची कुठरिया की जगह एक छोटा सा पक्का मकान बनवाने की। पिता की भावनाओं को देखते हुए सूरजपाल चौहान स्वयं मकान बनवाने के लिए गांव गये। सूरजपाल चौहान लिखते हैं- "भट्टे से ईंटें आ चुकी थीं और राज-मिस्त्री काम में जुटे हुए थे। गांव के जाटव परिवार के सभी लोग खुश थे। इन्हें खुशी थी कि वाल्मीकि मोहल्ले में भी पक्का मकान बन रहा है।" वहीं दूसरी तरफ गांव के बसीनें की मनः स्थिति का चित्रण करते हुए सूरजपाल चौहान लिखते हैं- "उधर गांव के बसीनें के सीने पर साँप लोट गया था। उनसे सहन नहीं हो पा रहा था कि गाँव का भंगी जो कल एक कच्ची फूस से बनी कुठरिया में रहता था, आज पक्का मकान बनवा रहा है।'' अंत में ठाकुर, वाल्मीकि और जाटवों में लड़ाई करवाने की कोशिश करता है। लेकिन ठाकुर अंतःतोगत्वा सफल नहीं हो पाता है क्योंकि दलितों में अब एकजुटता की भावना आ गई है।

श्यौराज सिंह बेचैन अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में लिखते हैं- "गाँव के भीतर इनका एक छोटा सा झोपड़ीनुमा कच्ची मिट्टी से बना पुश्तैनी घर हुआ करता था। आस-पास जाटों के पक्के मकान, लम्बे चौड़े दालान और बड़े-बड़े घेर थे। फूफा बंधु जब मवेशी की खाल उतार कर गाँव लाते थे, तो पूरी तरह छुपा कर ही लाते थे, इसलिए कि गाँव में खाल ले जाने पर हिन्दुओं को एतराज होता था। हिन्दुओं के बीच इसकी बदबू न फैले, इसके लिए स्थलों पर नमक छिड़कर उसकी बदबू मार दी जाती थी।"

इन दलित आत्मकथाओं में दलित लेखकों ने मानव जीवन की बुनियादी आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान की पीड़ा को बड़ी ही बेबाकी के साथ स्थापित किया है। दलित लेखकों ने अपने बुनियादी जीवन-संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है, दलित आत्मकथायें उसी की अभिव्यक्ति है। यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। जीवन की इस जिजीविषा को श्यौराज सिंह बेचैन के शब्दों में देख सकते हैं- "आज मेरी स्मृति में वह अतीत कौंधता हैं ढेरों सवाल करता है मेरे वर्तमान से। कितनी लंबी संघर्ष यात्रा के बाद जिंदगी इस बदले मुकाम पर आ पहुंची है। कहा नहीं जा सकता। जो सोने लायक नहीं था, वहाँ सोया, जो पहनने लायक नहीं था उसे पहना और जो खाने लायक नहीं था, उसे खाया। कैसी-कैसी मजबूरियाँ झेलनी पड़ी, यह सवाल मेरे भीतर लावे की तरह आज तक जल रहा है।"

इन सभी दलित आत्मकथाओं ('जूठन', 'मुर्दहिया', 'अपने-अपने पिंजरे', 'तिरस्कृत', 'दोहरा अभिशाप', 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर') की दूसरी मुख्य समस्या 'जाति' की है। 'जाति' भारतीय समाज व्यवस्था की एक ऐतिहासिक विडंबना है जो सामाजिक वर्चस्व कायम करने के उद्देश्य से रची गयी है। जाति-व्यवस्था ने हजारों वर्षों के इतिहास में गैर बराबरी, ब्राह्मणवादी वर्चस्व को स्थापित करके जाति-आधारित शोषण की नींव पुख्ता की है। इसके कारण दलित लगातार विपन्नता, दरिद्रता और सामाजिक विद्वेष के शिकार होते रहे हैं। हिन्दी दलित आत्मकथाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि एक दलित लेखक ने अपने व्यक्तिगत जीवन में जाति की पीड़ा के दंश को कैसे महसूस किया है और उसे कैसे झेला है? जाति की इसी अमानवीयता का जिक्र करते हुए

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहा है कि– "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय–भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इंसानी का दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।" इन सभी आत्मकथाओं में जाति की ऐसी ही विद्रूपता दिखाई देती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि और उनके एक सजातीय सहपाठी को, त्यागी जाति के उन्हीं के शिक्षक ने अपने घर से जो काफी दूर था। गेहूँ की एक बोरी लाने के लिए भेजा था। त्यागी के घर इन लोगों को खाना खिलाया गया। थोड़ी देर बाद एक वृद्ध इन लोगों से परिचय पूछता है। ओमप्रकाश बाल्मीकि अपनी आत्मकथा 'जूठन' में लिखते हैं– "जैसे–तैसे हम लोग खाना खा कर बाहर आ गये थे। भिक्खूराम बुजुर्ग की पास वाली चारपाई पर बैठा था। इस बीच एक और व्यक्ति वहां आ गया।... बरला से आए है, सुनते ही उसने सवाल दागा था, कोण जात है? उसके सवाल का उत्तर दिया मैंने 'चुहड़ा जात है।' उन दोनों के मुंह से एक साथ निकला था "चुहड़ा"? बुजुर्ग ने चारपाई के नीचे पड़ी लाठी उठाकर तड़ से मार दी थी भिक्खू राम की पीठ पर।" वे आगे लिखते हैं– "बुजुर्ग के मुंह से अश्लील गालियों की बौछार होने लगी थी। आंखे भयानक लग रही थी। दुबले पतले शरीर में शैतान उतर आया था। उनके बर्तनों में आदर के साथ बैठकर खाना खाने, चारपाई पर बैठने का दुःसाहस किया था जो उनकी नज़र में अपराध था। कई लोगों की राय थी रस्सी से बांधकर दोनों को पेड़ पर लटका दो।" ऐसी है हमारे समाज की जाति व्यवस्था जहाँ पर निम्न जाति के लोग अपने से ऊँची जाति के लोगों के साथ न तो बैठ सकते हैं और न ही खाना खा सकते हैं। आखिर यह कैसा समाज है? ये आत्मकथा हमारे सामने कई सारे सवाल खड़े करती है।

तुलसीराम अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में लिखते हैं– "मुझे देखते ही हीरालाल ने कहा: 'का रे चमरा तं येहों आ गइलें। ये वही हीरालाल थे जो मुझे बुलाने के लिए हमेशा' 'चमरा–चमरा' शब्द का इस्तेमाल किया करते थे। चिंतामणि के निवास से जाने के पहले उन्होंने मुझे यह कहकर धमकाया कि 'देखत हईं तूं कइसे इम्तिहान दे ला।' हीरालाल के व्यवहार से मैं बहुत डर गया था। उस समय जातीय हिंसा के लिए कुख्यात चंडेसर मेरे लिए साकार हो उठा।" उस समय के ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोग निम्न जाति के लोगों को आगे बढ़ते हुए नहीं देखना चाहते थे। इसीलिए वे लोग तुलसीराम को मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना देने की कोशिश करते हैं।

मोहनदास नैमिशराय अपने बड़े भाई के साथ अपनी बहन के गांव जाते हैं। गर्मी का मौसम था। रास्ते में इन्हें प्यास लगती है। गांव के लोगों से इनका वार्तालाप प्रारम्भ होता है। मोहनदास नैमिशराय अपनी आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में लिखते हैं कि– "प्यास से मेरा दम ही निकला जा रहा था। वे दोनों ही हमारी तरफ गौर से देखे जा रहा था। पानी तक को न पूछा था उन्होंने हमसे। मेरा प्यासा मन भीतर से पानी–पानी चिल्ला रहा था। थोड़ी देर बाद उनमें से एक ने पूछा– "कित गांव जाओगे?" "निठारी गांव" भइया ने उत्तर दिया। "किसके हियां?" सुजान के यहाँ। उनमें से एक ने पूछा– "जो चमार है।" "हाँ" भइया के मुख से निकला था। अचानक दोनों के तेवर बदल गये थे। "तो म्हारे घर अग्गे कियों खड़े हो? जाओ सिद्दे–सिद्दे आगे चमारों के ही घर पड़ेंगे। पैले।" वे सांप की तरह फुफकारे थे। "हमें पानी पिला दो, बड़ी प्यास लगी है।" भइया के स्वर में गिड़गिड़ाहट के भाव थे। "म्हारे घर चमारों की खातर पानी ना है।" उन्होंने इंकार कर दिया था।" जैसे कोई हारा योद्धा कई सारे जख्म लिये गिरते–पड़ते अपने स्थान पहुँचता है। वैसी ही हालत मोहनदास नैमिशराय की हो गयी थी। मोहनदास नैमिशराय उन व्यक्तियों के व्यवहार से अन्दर से टूट कर बिखर गये थे।

कौसल्या बैसंत्री अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में लिखती हैं– "मैं अस्पृश्य हूँ, इसका मुझे बहुत दुःख होता था और मैं हीनता महसूस करती थी। कोई मुझझे मेरी जाति न पूछ बैठे, इसका मुझे सदैव डर रहता था। एक बार जिसका मुझे ज्यादा डर था वही बात हो गई। कुनबी लड़कियों ने मुझसे पूछा कि मेरी जाति क्या है। मैंने डर के मारे कह दिया कि मैं भी कुनबी जाति की हूँ। उन्होंने पूछा तिलेल हो या खैरे? मुझे उनकी उपजाति के नामों का पता चला। मैं मन में सटपटा गई थी, परंतु उन्हीं की बात सुनकर मैंने कहा कि मैं तिलैली कुनबी हूँ।.... उस वक्त छुआछूत बहुत थी। मारपीट तक हो जाती थी इसलिए मैं बहुत डर गई थी।" जाति का दंश व्यक्ति को हीनताबोध महसूस कराने लगता है। इसलिए लेखिका अपनी सहेलियों से अपनी जाति को छुपाती है। जाति पीड़ा को लेकर मोहनदास नैमिशराय ने कहा है– "जब इस देश में आर्य आये होंगे। कितनी यातनाएं सहनी पड़ी होंगी इस देश के मूल निवासियों को। वही यातनाएं हजारों सालों से आज भी झेल रहे हैं। हमने भी तो आज बहुत कुछ झेला था। सवर्ण जाति के लोगों ने तो हमें आदमी ही मानने से इनकार कर दिया था। तभी तो मुझे जानवरों के साथ पानी पीना पड़ा था।"

सूरजपाल चौहान ने अपनी आत्मकथा 'तिरस्कृत' में जाति की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि जब उनकी संस्था के महासचिव डॉ. रवीन्द्र ने आत्मीयता दिखाते हुए हैरानी के साथ कहा– "अरे वाल्मीकि हो और प्रबंधक के पद पर भी कार्य करते हो....।" यह वाक्य लेखक को हिला देता है। वर्मा जी कहते हैं– "अरे हम किसी तरह की छुआछूत नहीं मानते... हम

अपने घर आंगन में भंगिन तक को बैठाकर चाय व नाश्ता करवा देते हैं।... तुम वाल्मीकि हो तो क्या हुआ।" सूरजपाल चौहान जाति पीड़ा के दंश को हर पल महसूस ही नहीं करते बल्कि जीवन में सहते भी हैं।

श्यौराज सिंह बेचैन ने अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में कहा है- "हम अपने जाटवों में चमार, तेलियों, यादवों और बनियों में चमहा थे, हालांकि हमारे जाति भीतर के भेद से अन्य जातियां वाकिफ नहीं थी। वे सभी को चमार संबोधित करती थी। आज भी करती हैं जबकि हर स्कूल गये बच्चे के पास जाति प्रमाण पत्र में जाटव लिखा है। मैं भी उसी पंक्ति में आता हूँ। हिंदू हो या मुसलमान, सभी की नजरें उपेक्षा भाव से भरी होती थीं। जिन्हें हम दादी कहते, ऐसी तेलिन जब मूड में होती तो अन्योक्ति के माध्यम से गालियाँ देती, कभी भैंस से कहती- "पी ले पानी पी ले तेई चमार चीरै" कभी कुत्तिया को डंडा मारते हुये बोलती- "कैसी चमरिया सी निठल्ली बैठी है। उठि नाईं तो टांगें तोड़ दिउंगी।" ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोगों ने दलितों को जानवर से भी बद्तर समाज में समझा है। जानवरों को दलितों की उपमायें दी जाती हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में- "दलित विमर्श और दलित आंदोलन में 'जाति' की समस्या का सीधा सम्बंध 'मुक्ति' से है। जाति व्यवस्था ने हजारों वर्षों के इतिहास में गैर बराबरी-ब्राह्मणवादी वर्चस्व को स्थापित करके जाति-आधारित शोषण की नींव पुख्ता की है। इसके कारण दलित लगातार विपन्नता, दरिद्रता और सामाजिक विद्वेष के शिकार होते रहे हैं। उन पर बेगार प्रथा का अंकुश लगाकर उन्हें दासता की गहरी खाई में डाल दिया गया। बंधुआ मजदूर जैसे अमानवीय बंधनों तक में उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी बांधकर रखा गया। 'जाति-व्यवस्था' आज भी भारतीय जीवन का एक विशिष्ट अंग है और समूचे परिदृश्य को प्रभावित कर रही है। जिनका वर्चस्व है वे इसे छोड़ना नहीं चाहते और अपने प्रभाव का दायरा लगातार विकसित करते जा रहे हैं।"

हिन्दी दलित आत्मकथाओं की तीसरी मुख्य समस्या 'शिक्षा' है। शिक्षा ही वह कुंजी है जिससे मनुष्य का जीवन बेहतर होता है तथा वह शिक्षा के माध्यम से ही अपने जीवन में नये आचार और विचार लाता है। आखिरकार ऐसा क्यों है कि दलित व्यक्ति शिक्षा पाना चाहते हैं किन्तु ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोग हर संभव प्रयास करते हैं कि दलितों को शिक्षा न मिले। ऊपर से यह बात बेशक सहज लगे किंतु गहराई में जाकर देखें तो चौंकाने वाला तथ्य उभरकर सामने आता है कि ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोग यह चाहते हैं कि येन-केन प्रकारेण शिक्षा की कुंजी सिर्फ उन्हीं के पास रहे। शिक्षा के इसी महत्त्व को देखते हुए बाबासाहेब अम्बेडकर ने अपने महत्त्वपूर्ण वक्तव्य- शिक्षित बनों, संघर्ष करो, संगठित रहो में, शिक्षा को सर्वोपरि रखा था, क्योंकि शिक्षा नहीं होगी तो संगठित होकर संघर्ष करना संभव नहीं होगा और न ही जाति, धर्म, अंधविश्वास, कुरीतियों और ऊंच-नीच के वे भेदभाव खत्म होंगे जिनके सहारे ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोग दलितों का हजारों वर्षों से शोषण करते आये हैं।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं का अध्ययन करते हुए यह बात साफ तौर से नज़र आती है कि दलितों को प्राथमिक शिक्षा पाने की जद्दोजहद करनी पड़ती है। एक तरफ दलित बालक पढ़ने की तड़प मन में लिए जी तोड़ परिश्रम करता है तो दूसरी ओर ब्राह्मणवादी व्यवस्था उसे शिक्षा से वंचित करने के लिए क्रूरता भरा व्यवहार करती है। लगभग हिंदी दलित आत्मकथाओं में शिक्षा को लेकर किया गया संघर्ष महत्त्वपूर्ण है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जीवन ऐसे ही कटु अनुभवों से गुजरा है। प्रारंभिक शिक्षा हासिल करने में जो भोगा और सहा उसकी स्मृति मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अध्यापकों का जो रूप ओमप्रकाश वाल्मीकि ने देखा है वह बेहद पीड़ादायक है। इसका चित्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा 'जूठन' में किया है- "एक रोज हेडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा, 'क्या नाम है बे तेरा?' 'ओमप्रकाश', मैंने डरते-डरते धीमें स्वर में अपना नाम बताया। हेडमास्टर को देखते ही बच्चें सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी। 'चूहड़े का है?' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला। 'जी' 'ठीक है... वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियां तोड़के झाडू बणा ले, पत्तों वाली झाडू बणाना और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा। तेरा तो यो खानदानी काम है। जा, फटाफट लग जा काम पे।" शिक्षा संस्थानों में आज भी जातिवाद मौजूद है, जिसने दलितों की प्रतिभा को आगे नहीं बढ़ने देने में अहम् भूमिका निभाई है।

तुलसीराम का प्रारम्भिक शिक्षा के लिए विद्यालय में जब प्रवेश हुआ तब इनकी कक्षा में 43 विद्यार्थी थे जिनमें तीन लड़कियां थी बाकी सब लड़के थे। तुलसीराम अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में लिखते हैं- "रोल नम्बर के हिसाब से कक्षा में टाट पर बैठाया जाता था। पहली पंक्ति रोल नम्बर एक से शुरू होकर तेरह पर समाप्त हो गई। शेष दो पंक्तियों में इसी क्रम में पंद्रह-पंद्रह बच्चे बैठते थे। मेरा नाम और स्थान पहली कतार में रोल नम्बर पांच के साथ होता था। इन तेरह बच्चों में मेरे अलावा चिखुरी, रमझू, बाबूराम, यदुनाथ, मुल्कू, रामकेर, दलसिंगार, जग्गन, रामनाथ, बिरजू, बाबूलाल तथा मेवा थे। शीघ्र ही इस तेरह का रहस्य उजागर हो गया। हम सभी दलित थे। मुंशी जी की उपस्थिति में हमें कोई अन्य बच्चा नहीं छूता था। ऐसे ही वातावरण में शुरू हुई मेरी शिक्षा।" प्रारम्भिक शिक्षा में ही इस प्रकार

का भेद कर दिया जाता है। जिससे विद्यार्थी हीनताबोध का शिकार हो जाता है। अंत में बहुत सारे दलित विद्यार्थी विद्यालय छोड़ देते हैं।

भारतीय समाज के व्यक्ति विद्यालय को शिक्षा का सूरज मानते हैं। भारतीय समाज में जैसे-जैसे यह सूरज आगे बढ़ेगा वैसे-वैसे अशिक्षा के साथ कुरीतियां तथा कुप्रथाएं दूर होंगी। इसलिए सभी लोग अपने बच्चों को पढ़ाने-लिखाने लगे हैं। लेकिन दलित समुदाय के व्यक्ति आर्थिक अभाव के कारण अपने बच्चों को आर्थिक शिक्षा नहीं दे सकते और जो व्यक्ति यह शिक्षा ले सकता है उसे ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोग लेने नहीं देते हैं। मोहनदास नैमिशराय अपनी आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में लिखते हैं- "हमारे स्कूल को बाहर के लोग अक्सर चमारों का स्कूल कहा करते थे। जैसे चमारों का कुआं, चमारों का नल, चमारों का नीम, चमारों की गली, चमारों की पंचायत आदि-आदि, वैसे ही स्कूल के साथ जुड़ी थी हमारी जात। जात पहले आती थी, स्कूल बाद में। यही कारण था कि इस स्कूल में कभी भी गिनती के पूरे अध्यापक न हुए थे।.... सही बात तो यह थी कि हमारे स्कूल में सवर्ण जात का कोई अध्यापक आना ही नहीं चाहता था। इसके सीधे-सीधे दो कारण थे। पहला यह कि स्कूल चमारों की बस्ती में था, दूसरा इसमें सभी चमारों के बच्चे पढ़ते थे। जो अध्यापक आ भी जाते थे वे नाक-भौंह सिकोड़कर पढ़ाया करते थे। हमारी ही बस्ती में हमारी जाति के नाम पर गालियां दे बैठते और हम सब सुनते थे।" भारतीय समाज के सवर्ण अध्यापकों की इस तरह की मानसिकता है कि वो दलित समुदाय के व्यक्तियों को शिक्षित ही नहीं करना चाहते हैं।

कौसल्या बैसंत्री ने अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में लिखा है- "बस्ती के बाहर उच्चवर्गीय लोगों के लड़के भी हम पर बहुत जलते थे : ''ये हरिजन बाई जा रही है। दिमाग तो देखो, इसका बाप तो भिखमंगा है, साइकिल पर जाती है।'' कहकर वे भी साइकिल से गिराने की कोशिश करते थे। अपने को उच्चवर्गीय समझने वाली औरतें भी मुझे साइकिल पर जाता देखकर बड़े कुत्सित ढंग से हंसती थीं। उन्हें ताज्जुब भी होता था कि हम अछूत और मज़दूर के बच्चें इतना कैसे पढ़ पाते हैं।"

सूरजपाल चौहान की जाति का पुछल्ला ब्रह्मराक्षस की तरह सदैव पीछे लगा रहा क्योंकि शिक्षा के विद्वान जिन्हें शिक्षक कहा जाता है वह स्वयं जाति का ओछापन याद दिलाते रहे। सूरजपाल चौहान ने अपनी आत्मकथा 'तिरस्कृत' में लिखा हैं- "मैं तड़प उठता था उस द्रोणाचार्य की बातें सुनकर। एक दिन अपने साथी अध्यापकों से मेरी ओर संकेत कर उसने कहा यदि देश के सारे चूहड़े-चमार पढ़ लिख गए तो गली-मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा।" सूरजपाल चौहान अपने मित्र के घर जाते उसके परिवार के सदस्य देश के दलितों के विषय में चर्चा करते हुए, देश की सरकार व कानून को कोसते हुए कहते- "साले चुहड़े-चमार पढ़-लिखकर" आगे बढ़ते जा रहे हैं, जगजीवन राम चमार को देखो, रक्षा मंत्री के पद तक पहुंच गया।" इस प्रकार की मानसिकता है हमारे गैर दलित समाज के व्यक्तियों की, जो दलितों को आगे बढ़ते हुए देखना पंसद नहीं करते तथा उनको अच्छी शिक्षा भी प्राप्त नहीं करने देना चाहते हैं।

श्यौराज सिंह बेचैन में शिक्षा की ललक अद्‌भुत थी। उन्हें जीवन में वे सारे कार्य करने पड़े जो कि नहीं करने चाहिए थे। श्यौराज सिंह बेचैन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है- "शिक्षा मेरे लिए उस कबूतर के चुग्गे की तरह थी, जिसे पाने के लालच में मैं हर बार किसी न किसी शोषण के जाल में फंस जाता था।... मुझे पढ़ने को मिले तो मैं अक्षरों के बदले अपने शरीर के खून की बूंदे भी दे दूंगा।" श्यौराज सिंह बेचैन जैसी ललक शायद ही किसी गैर दलित व्यक्तियों में दिखायी देती है।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं ('जूठन', 'मुर्दहिया', 'अपने-अपने पिंजरे', 'दोहरा अभिशाप', 'तिरस्कृत', 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर') में हम उनके जीवन की उन तल्ख और निर्मम सच्चाईयों को देख सकते हैं जिनमें मानवीय पीड़ा अपनी पूरी सघनता से व्यक्त हुई है। इसका सबसे बड़ा कारण व्यक्ति के ऊपर सड़ी-गली व्यवस्था का वह आरोपण है जिसके प्रति वह विवश होकर सब कुछ सहते जाने के लिए अभिशप्त रहा है। यदि समाज में दलित समुदाय के व्यक्तियों को रोटी, कपड़ा और मकान, शिक्षा तथा जाति-भेद खत्म हो जाये तो समाज में समानता आयेगी। सर्वप्रथम समाज में व्याप्त इन्हीं समस्याओं से व्यक्तियों को जूझना पड़ता है।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं के सरोकार समता, स्वतंत्रता, बंधुता और न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था को बनाने पर जोर देती है क्योंकि हिन्दी साहित्य या समाज में जिन सरोकारों को महत्त्व दिया गया है उनमें 'दलित' अपने आपको अलग पाता है। वह उन आदर्शों, मान्यताओं, स्थापनाओं को अपने विरुद्ध पाता है जिन्हें साहित्य में स्थापित करने के प्रयास होते रहे हैं। इन सबका एक ही कारण है समाज में जाति-व्यवस्था का विद्यमान होना। समाज में जाति-व्यवस्था राष्ट्र के एकीकरण में बहुत बड़ी बाधा है। प्रख्यात समाजशास्त्री जी.एस. घुर्ये ने जाति-व्यवस्था के दुष्परिणामों की चर्चा करते हुए कहा है कि- "जाति-व्यवस्था देश की एकता में बाधा उत्पन्न करती है। यह सामाजिक निषेधों, पवित्रता एवं अपवित्रता की अवधारणा से राष्ट्रीय जागृति का विरोध करती है। जाति-व्यवस्था क्षैतिज एवं उदग्रगामी, गतिशीलता को बाधित करती है। यह औद्योगिक एवं सामाजिक विकास के लिए बहुत ही बड़ी बाधा के रूप में उपस्थित होती है।"

दलित चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने

सरोकार को स्पष्ट करते हुए लिखा है- "दलित चेतना का सरोकार इस प्रश्न से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि 'मैं कौन हूँ?' चेतना का सम्बंध दृष्टि से होता है, जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका के छवि के तिलस्म को तोड़ती है। अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर नकार दिया जाना यानि दलित होना और उसकी चेतना यानी दलित चेतना, जो दलित आंदोलनों के एक लंबे इतिहास की देन है। अलग-अलग कालखण्डों में यह अलग रूपों में दिखाई पड़ती है। भक्तिकाल के कवियों में यह रूप अलग है, लेकिन इस चेतना के बीज वहां मौजूद है जिसे कालांतर में एक संघर्षशील बौद्धिक रूप मिलता है। ज्योतिबा फुले के संघर्ष के रूप में आगे चलकर यह रूप एक नए और जुझारू रूप में विकसित होता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जीवन-संघर्ष दलितों में एक नई चेतना का सूत्रपात करता है जिसे मुक्ति संघर्ष की चेतना कहना ज्यादा प्रासंगिक होगा। यही चेतना साहित्य की प्रेरणा बनकर दलित-साहित्य के रूप में दिखाई देती है जिसमें मुक्ति, स्वतंत्रता के गंभीर सरोकार विद्यमान है। अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिबोध, पाखंड-कर्मकांड का विरोध, सामाजिक न्याय की पक्षधरता, वर्ण व्यवस्था का विरोध, सामंतवाद का विरोध, पूंजीवाद-बाजारवाद का विरोध, सांप्रदायिकता का विरोध, ब्राह्मणवाद का विरोध, अधिनायकवाद का विरोध, जैसे सवाल दलित साहित्य के सरोकारों में शामिल है।"

डॉ. विमल थोरात हिन्दी दलित आत्मकथाओं के सरोकार को स्पष्ट करती हुयी लिखती हैं- "यह आत्मकथानात्मक रचनाएं समता, स्वतंत्रता और न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था बनाने की आवश्यकता पर बल देती है। दलित मुक्ति आंदोलनों से ग्रहण किये गए तप और शक्ति ने उसे जनक्रांति के लिए प्रेरित किया है। वेदना के गर्भ से प्रस्फुटित स्वर आज संघर्ष के तेजस्वी स्वर में बदल गया है। यह स्वर निराशा का नहीं आशा का स्वर है। अस्मिता की खोज में निरंतर रचनात्मक आयामों को छू लेने की इनमें सामर्थ्य है। परिवर्तन लाने की शक्ति के रूप में आज आत्मकथायें पड़ाव-दर-पड़ाव अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती जा रही हैं।"

हिंदी दलित आत्मकथायें जीवन की सच्चाई और सामाजिक विद्वेष, असमानता के भाव, भाई-चारे के विरोध की सच्चाई चित्रित करके, समाज को आईना दिखाने और छोड़ दिए गए गुमनाम इतिहास को फिर से लिपिबद्ध करने का काम कर रही है। हिंदी की इन दलित आत्मकथाओं से अतीत की इस कुरुपता और भयावहता से आने वाली पीढ़ी की सजगता बढ़े, उनके मन में परम्पराओं और जड़ अमानवीय संस्कारों से मुक्त होने की इच्छा जागृत हो सके, ताकि एक बेहतर समाज का निर्माण हो सके। अर्थात् हिंदी दलित आत्मकथायें समाज को एक धागे में पिरोने का कार्य कर रही है। ■

संदर्भ ग्रंथ

1. मैनेजर पाण्डेय- संकट के बावजूद पृ.सं. 11, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, 2002
2. सं.- श्यौराज सिंह बेचैन एवं देवेन्द्र चौबे- चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य नवलेखन प्रकाशन बिहार, 2000-01, पृ.सं. 137
3. पत्रिका अपेक्षा सम्पादक तेजसिंह, वर्ष-9, अंक 32-33, पृ.सं. 11, नयी दिल्ली
4. वही
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि- जूठन भूमिका से राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009
6. भारत का संविधान- सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, पृ.सं. 1
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि- मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृ.सं. 16, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
8. सं.- श्यौराज सिंह बेचैन एवं देवेन्द्र चौबे- चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य
9. जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 19
10. वही
11. मुर्दहिया- तुलसीराम, पृ.सं. 15
12. अपने-अपने पिंजरे- मोहनदान नैमिशराय, पृ.सं. 106
13. वही, पृ.सं. 109
14. दोहरा अभिशाप- कौसल्या बैसंत्री, पृ.सं. 41
15. तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान, पृ.सं. 17
16. वही, पृ.सं. 18
17. मेरा बचपन मेरे कंधों पर- श्यौराज सिंह बेचैन, पृ.सं. 192
18. मुख्यधारा और दलित साहित्य- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 192
19. जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 28
20. वही, पृ.सं. 85
21. मुर्दहिया- तुलसीराम, पृ.सं. 34
22. अपने-अपने पिंजरे भाग-1- मोहनदास नैमिशराय की भूमिका से
23. वही, पृ.सं. 56
24. दोहरा अभिशाप- कौसल्या बैसंत्री, पृ.सं. 54
25. तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान, पृ.सं. 44, 45
26. मेरा बचपन मेरे कंधों पर- श्यौराज सिंह बेचैन, पृ.सं. 198
27. जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 30, 31
28. वही, पृ.सं. 31, 32
29. मुर्दहिया- तुलसीराम, पृ.सं. 41
30. अपने-अपने पिंजरे भाग-1- मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 42
31. वही, पृ.सं. 43
32. वही, पृ.सं. 43
33. दोहरा अभिशाप- कौसल्या बैसंत्री, पृ.सं. 30
34. वही, पृ.सं. 43
35. वही, पृ.सं. 41
36. वही, पृ.सं. 42
37. मेरा बचपन मेरे कंधो पर- श्यौराज सिंह बेचैन, पृ.सं. 12
38. वही, पृ.सं. 193
39. जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 12
40. वही, पृ.सं. 65
41. वही, पृ.सं. 66
42. मुर्दहिया- तुलसीराम, पृ.सं. 156
43. अपने-अपने पिंजरे भाग-1- मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 68
44. दोहरा अभिशाप- कौसल्या बैसंत्री, पृ.सं. 41, 42
45. अपने-अपने पिंजरे भाग-1- मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 89
46. तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान, पृ.सं. 104
47. वही, पृ.सं. 104
48. मेरा बचपन मेरे कंधो पर- श्यौराज सिंह बेचैन, पृ.सं. 196
49. मुख्यधारा और दलित साहित्य- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 125
50. जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 14, 15
51. मुर्दहिया- तुलसीराम, पृ.सं. 23
52. अपने-अपने पिंजरे भाग-1- मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 33
53. दोहरा अभिशाप- कौसल्या बैसंत्री, पृ.सं. 61
54. तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान, पृ.सं. 16
55. वही, पृ.सं. 17
56. मेरा बचपन मेरे कंधों पर- श्यौराज सिंह बेचैन
57. भारतीय समाजशास्त्र के प्रमुख संप्रदाय- अमित कुमार शर्मा, पृ.सं. 21, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड प्रा.लि., नयी दिल्ली
58. मुख्यधारा और दलित साहित्य- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 50, 51
59. दलित दखल- सं.- रजतरानी मीमू एवं श्यौराज सिंह बेचैन, पृ.सं. 206

(लेखक जे.एन.यू. में शोधार्थी हैं)

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय (भारत सरकार की योजनाएं)

जिला विकलांगजन पुनर्वास केन्द्र (डीडीआरसी)

उद्देश्य

डीडीआरसी को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा वित्तीय, अवसंरचना, प्रशासनिक तथा तकनीकी समर्थन प्रदान किए जाते हैं ताकि वे जिले में विकलांग व्यक्तियों के लिए पुनर्वास समर्थन प्रदान करने में समर्थ हो सकें। डीडीआरसी के उद्देश्य निम्नानुसार हैं-

i. शिविरों के माध्यम से विकलांग व्यक्तियों का सर्वेक्षण और पहचान;

ii. विकलांगताओं की रोकथाम हेतु जागरूक करने तथा प्रोत्साहित करने के लिए जागरूकता सृजन;

iii. प्रारंभिक हस्तक्षेप;

iv. सहायक यंत्रों की आवश्यकता का आकलन, सहायक यंत्रों का प्रावधान/फिटमेंट, सहायक यंत्रों की अनुवर्ती कार्रवाई/मरम्मत;

v. थेरेपी संबंधी सेवाएं अर्थात् फिजियो थैरेपी, व्यावसायिक थैरेपी, स्पीच थैरेपी इत्यादि;

vi. विकलांग व्यक्तियों के लिए विकलांगता प्रमाण पत्रों, बस पासों तथा अन्य रियायती और सुविधाओं का सरलीकरण;

vii. रेफलरल और सरकार एवं चेरिटेबल संस्थानों के माध्यम से सर्जिकल सुधार के लिए व्यवस्थाएं;

viii. एनएचएफडीसी की राज्य चैनेलाइजिंग एजेंसियों (एससीए सहित) बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से नवनियोजन के लिए ऋणों की व्यवस्था;

ix. विकलांग व्यक्तियों, उनके माता-पिता तथा पारिवारिक सदस्यों का परामर्श;

x. बाधा-मुक्त वातावरण का संवर्धन;

xi. विकलांग व्यक्तियों के लिए शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार को बढ़ावा देने के लिए सहायक और सम्पूरक सेवाएं प्रदान करना;

xii. अध्यापकों, समुदाय तथा परिवारों के लिए अभिविन्यास प्रशिक्षण करना;

xiii. प्रारंभिक प्रेरणा के लिए तथा शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और नियोजन को बढ़ावा देने के लिए विकलांग व्यक्तियों को प्रशिक्षण देना;

xiv. स्थानीय संसाधनों को ध्यान में रखते हुए विकलांग व्यक्तियों को उपयुक्त व्यावसायों की पहचान करना तथा डिजाइन करना और व्यावसायिक प्रशिक्षण देना तथा उपयुक्त धंधें की पहचान करना ताकि वे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन सकें;

xv. मौजूदा शैक्षिक, प्रशिक्षण और व्यावसायिक संस्थाओं के लिए रैफरल सेवाएं प्रदान करना।

डीडीआरसी के लिए वित्त पोषण

नीचे दिए गए विवरण के अनुसार आवर्ती और गैर-आवर्ती व्यय संबंधी लागत मानकों को 1.4.2010 से संशोधित कर दिया गया है। इस योजना में जनशक्ति पर कुल व्यय 8.10 लाख रूपये प्रति वर्ष तथा पूर्वोत्तर राज्यों, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, पुडुचेरी, दमन और दीव, दादर और नगर हवेली तथा जम्मू-कश्मीर के मामले में 9.72 लाख रूपये प्रति वर्ष से अधिक नहीं होगा। तथापि, राज्य सरकारें जिला कलेक्टरों को उनके पास उपलब्ध निधियों से जहां कहीं यह आवश्यकता महसूस की गई हो, डीडीआरसी के मानदेय अथवा अन्य आवश्यकताओं को सम्पूर्ति करने के लिए प्राधिकृत कर सकती हैं।

(लाख रूपये)

पदनाम	पूर्व संशोधित (प्रति वर्ष)	संशोधित लागत (प्रतिवर्ष)	
	पुरानी दर	सामान्य	विशेष क्षेत्रों के लिए* 20% बढ़ोत्तरी
कुल मानदेय	5.64	8.10	9.72
कार्यालय व्यय/(आकस्मिक व्यय	1.50	2.10	2.10
उपकरण (केवल प्रथम वर्ष हेतु)	5.00	7.00	7.00
कुल प्रथम वर्ष के लिए	12.14	17.2	18.82
कुल द्वितीय वर्ष के लिए	7.14	10.2	11.82
कुल तृतीय वर्ष के लिए	7.14	10.2	11.82
विकलांग व्यक्ति अधिनियम के अंतर्गत कुल व्यय	26.42	37.6	42.46

*उच्च उच्चाई, सीमा क्षेत्रों, अशांत क्षेत्रों और जनजातीय उप–योजना क्षेत्रों जैसे विशेष क्षेत्रों में अवस्थित डीडीआरसी के पुर्नवास व्यावसायिक शेष देश के लिए निर्धारित दरों से 20% अधिक मानदेय के लिए हकदार होंगे।

जिला विकलांग जन पुनर्वास अधिकारी (डीडीआरओ)

संशोधित योजना में यह व्यवस्था है कि डीडीआरसी के वर्तमान व्यावसायिकों में से एक अथवा कोई उपयुक्त राज्य सरकार अधिकारी जैसा जिला प्रबंधन दल द्वारा तय किया गया था, डीडीआरओ के पद पर नामित होगा। डीडीआरओ डीडीआरसी के दैनिक समन्वय, प्रबंधन और प्रशासन के लिए उत्तरदायी होगा तथा 2000 रूपए प्रतिमाह की दर से मानदेय का भुगतान किया जाएगा।

एसआईपीडीए के अन्तर्गत डीडीआरसी के लिए वित्त पोषण की अवधि

यह योजना राज्य तथा केंद्रीय सरकार का एक संयुक्त उद्यम है। डीडीआरसी 'विकलांग व्यक्ति अधिनियम के कार्यान्वयन संबंधी योजनाओं' के माध्यम से तीन वर्षों की एक प्रारंभिक अवधि के लिए (पूर्वोत्तर क्षेत्र, जम्मू-कश्मीर, अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह, पुदुचेरी, दमन एवं दीव और दादर एवं नगर हवेली के मामले में पांच वर्ष) वित्त पोषित किए जाते हैं तथा इसके पश्चात दीनदयाल विकलांग जन पुनर्वास योजना की योजना (डीडीआरएस) के माध्यम से वित्त पोषित किए जाते हैं।

डीडीआरसी के अंतर्गत अनुदानों का घटाना

पूर्व संशोधित योजना में 3/5 वर्षों के पश्चात अनुदानों को 10 प्रतिशत वार्षिक दर से घटाया जाता था, किन्तु तत्कालीन संशोधित योजना में, डीडीआरसी के लिए अनुदानों की कटौती डीडीआरसी योजना के अंतर्गत निधियों की प्राप्ति आरंभ होने के पश्चात निम्नानुसार सीमित होगी;

i. दो वर्ष के अंतराल पर अनुमत सहायता अनुदान में 5 प्रतिशत कटौती।
ii. सहायता अनुदान में अनुमत लागत की कटौती 25 प्रतिशत से अधिक न हो।
iii. ग्रामीण क्षेत्रों में परियोजनाओं के लिए कटौती लागू नहीं होगी।

राज्य सरकार की भूमिका

राज्य सरकारों से डीडीआरसी के प्रभावी कार्यकरण में एक अपेक्षाकृत अधिक पूर्व सक्रिय भूमिका निभाने की उम्मीद होती है। राज्य/जिला प्रशासन की अपेक्षाकृत अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार डीडीआरसी की मानदेय और अन्य आवश्यकताओं को उनके विभिन्न कार्यकलापों को प्रभावी रूप में निष्पादित करने के लिए उपयुक्त रूप से समपूरित कर सकती है। राज्य सरकारें डीडीआरसी योजना की व्यापक परिकल्पना के भीतर जमीनी वास्तविकताओं पर विचार करते हुए डीडीआरसी के प्रभावी कार्यकरण के लिए संशोधन करने हेतु डीएमटीए के अध्यक्ष के रूप में उनके पद की हैसियत से जिला कलेक्टरों को प्राधिकृत कर सकती है। राज्य सरकारें जिला कलेक्टरों को केंद्रीय निधियों की निर्मुक्ति में क्रियाविधि संबंधी विलंबों के क्षेत्र में उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिए उनके पास उपलब्ध स्थानीय निधियों से अंतरिम अग्रिम लेने के लिए भी प्राधिकृत कर सकती हैं।

(विशेष जानकारी मंत्रालय के वेबसाइट www.socialjustice.nic.in पर)

आरक्षण एक मुद्दा

■रवीन्द्र कौर

देश को स्वतंत्र हुए 66 वर्ष हो गए हैं लेकिन आज भी देश में वंचित समाज विद्यमान है जिसको दलित, शोषित और पीड़ित कहते हैं, वह आज भी विकास व उन्नति की सीढ़ियां नहीं चढ़ा है, वह वर्षों से अपने लड़-खड़ाते कदमों को सम्भाल रहा है, इन कदमों को जो सहारा व अधिकार मिलने चाहिए, वह नहीं मिल रहे हैं, महिलाएं तो इस विकास की सीढ़ियों से कोसों दूर खड़ी हैं। संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपनी बुद्धि कौशल से भारतीय समाज संरचनानुसार एक खूबसूरत संविधान की रचना की। जिसमें 1950 के दशक में 'आरक्षण' की व्यवस्था, शोषित और वंचित समाज के साथ-साथ अन्य पिछड़े वर्गों के लिए भी की गई। संविधान में महिलाओं के अधिकारों की जोरदार पहल का ही नतीजा है कि आज महिला आरक्षण बिल के रूप में हमारे सामने हैं। महिला आरक्षण बिल का एक लाभ तो हुआ है कि जो समाज 'आरक्षण' के खिलाफ खड़ा था वह खुद आरक्षण की मांग करता हुआ नजर आ रहा है।

भारतीय संविधान में नारी को पुरुष के बराबर का दर्जा मिलने का ही नतीजा है कि लोकसभा और विधानसभा में वे स्वतंत्र रूप से चुनाव मैदान में उतर सकती हैं। जो बड़ी संख्या में जीतकर भी पहुंची है। यही कारण है कि वह देश के सर्वोच्च पद प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष जैसे पदों पर भी आसीन हुई हैं। 73वें संविधान संशोधन में महिलाओं को अपनी समस्याओं पर विचार विमर्श करने तथा स्थानीय स्तर पर निर्णयों में सहभागिता करने के लिए एक अवसर प्रदान किया। अनुच्छेद 243 (घ) 2 और 3 के अनुसार आरक्षित सीटों से एक तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों तथा जन जातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पंचायत में भरे गए स्थानों की कुल संख्या के एक तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे, परन्तु इन तमाम सकारात्मक पहलुओं के बावजूद सामाजिक पिछड़ेपन और पितृ सतात्मक व्यवस्था के चलते महिलाएं पूरी तरह से अपने अधिकारों तथा सशक्तिकरण के उद्देश्यों को नहीं प्राप्त कर पा रही हैं। दलित वर्ग की महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब हैं।

भारत देश में अनुसूचित जाति, जनजाति के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक एवं आर्थिक विकास में केन्द्र-राज्य सरकार ने किसी न किसी रूप में अनदेखी की है। भारतीय संविधान में आरक्षण का प्रावधान होने के बाद भी उनका ईमानदारी के साथ कार्यान्वयन नहीं किया गया।

भारत देश में अनुसूचित जाति, जनजाति के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक एवं आर्थिक विकास में केन्द्र-राज्य सरकार ने किसी न किसी रूप में अनदेखी की है। भारतीय संविधान में आरक्षण का प्रावधान होने के बाद भी उनका ईमानदारी के साथ कार्यान्वयन नहीं किया गया। जाति व्यवस्था ही भारत देश में किसी को ऊंचा और किसी को नीचा बनाती है, जिसकी वजह से एक वर्ग, जो अपने आप को उच्च समझता है। साधन सम्पन्न है। जबकि दूसरा वर्ग जिसे नीचा समझा जाता है, वह साधन विहीन, शोषित, पिछड़ा हुआ है यह भारत देश की जाति व्यवस्था की ही उपज है। जबकि सभी व्यक्ति सारी दुनिया में समान रूप से पैदा होते हैं, और समान रूप से मरते हैं। तो भारत में जन्मा व्यक्ति ऊंचा-नीचा कैसे हो सकता है, भारत में आरक्षण व्यवस्था की उत्पति का मूल कारण ही 'भारत की जाति व्यवस्था' है। ब्राह्मणों, सवर्ण वर्ग द्वारा शूद्रों का निरन्तर शोषण किया जाता है ऐसी स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए सर्वप्रथम कोल्हापुर के राजा छत्रपति शाहू जी महाराज ने 26 जुलाई 1902 को अपने राज्य में ब्राह्मणों व उच्च जाति के लोगों को छोड़कर शेष सभी जातियों के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था लागू की थी। तथा

डॉ. अम्बेडकर ने अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण की व्यवस्था हेतु संविधान के अनुच्छेद 340 का प्रावधान किया। डॉ. अम्बेडकर 'कम्युनल अवार्ड' प्राप्त करना चाहते थे, जिससे दलित स्वयं अपना नेता विधानसभा और संसद में भेज सकें। गांधी जी ने आमरण अनशन करके डॉ. अम्बेडकर को 'कम्युनल अवार्ड' प्राप्त नहीं करने दिया, 'कम्यूनल अवार्ड' के बदले डॉ. अम्बेडकर को 'आरक्षण नीति' को स्वीकार करना पड़ा।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने महिलाओं के आरक्षण की भी मांग की तथा जिसका परिणाम आज महिला आरक्षण बिल के रूप में हमारे सामने है। आरक्षण के सवाल पर भारतीय समाज लगातार तीखी बहसे करता रहता है। जुलूस-प्रदर्शन व बड़ी-बड़ी संगोष्ठियां तो हो ही रही हैं साथ ही 'आरक्षण' के विरोध में शरीर तक में आग लगायी गयी है। विरोध का नतीजा यह हुआ है कि आज भी 'आरक्षण' को खुले मन से न तो लागू किया गया है न ही स्वीकार किया गया हैं। संविधान और लोकतंत्र में जनता की महत्ता का दबाव है जिस कारण आरक्षण न तो पूरी तरह उगलते बनता है, न निगलते, फिर भी भारतीय जनता को धन्यवाद देना चाहिए कि देर से ही सही, उन्होंने भारतीय समाज में महिला आरक्षण की जरूरत समझी। 'आरक्षण' के मुद्दे को लेकर महिलाएं लम्बे समय से सड़क से लेकर संसद तक संघर्षरत रही हैं। महिला आरक्षण के विरोध में अनेक शासकवर्गीय पार्टियों ने अपने-अपने तर्कों से विरोध किया है। बल्कि भारत जैसे विशाल देश की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक संस्था संसद में महिला आरक्षण विधेयक को पास किया जाए और महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाना चाहिए, महिला आरक्षण को देश की निचली लोकतांत्रिक संस्था ग्राम पंचायतों में लागू किया है और वहां 50% महिला आरक्षण लागू है। इस आरक्षण की वजह से महिलाओं की स्थानीय राजनीतिक भागीदारी बढ़ी है, वहां की महिलाएं आज एक हस्तक्षेपकारी भूमिका में आ पायी हैं। पंचायतों में महिला आरक्षण महिला सशक्तिकरण के लिए एक बड़ा कदम रहा है।

स्वतन्त्र भारत में महिलाओं को संवैधानिक एवं कानूनी रूप से सशक्त बनाने हेतु संविधान के अनुच्छेद 14-15 में स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार देने का प्रावधान किया गया है। लेकिन क्या आज महिलाओं को भारतीय समाज में पुरूषों के बराबर अधिकार प्राप्त हैं? पुरूष प्रधान समाज में धार्मिक अनुष्ठानों व कर्मकाण्डों में भाग लेने हेतु, व्यवसाय, नौकरी, उच्च शिक्षा और किसी भी कार्य हेतु निर्णय लेने के लिए पुरूष वर्ग उत्तम व सर्वोपरि समझा जाता है। महिलाओं के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित मसलों में भी प्रायः पुरूष ही निर्णय लेता है। जबकि महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए अनेक प्रकार के कार्य व योजनाएं चल रही हैं।

1931-32 में लदंन में हुए गोलमेज सम्मेलन के दौरान इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड की अध्यक्षता में गठित अल्पसंख्यक समिति में डॉ. अम्बेडकर द्वारा एक ज्ञापन दिया गया था जिसमें दलितों के हितों की सुरक्षा के लिए कुछ प्रस्ताव किए गए थे। उनमें एक प्रस्ताव सरकारी नौकरियों में दलितों के प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया गया था।

सरकारी सेवाओं में दलितों के आने से सवर्ण समाज को धक्का लगता है। इसलिए वे आज दलितों को सरकारी सेवाओं में आने से रोकने और जो आर्थिक रूप से सम्पन्न हो गए है। उनको हाशिए पर लाने के उपाय करते हैं। सवर्ण हिन्दू भी सुधारवादी प्रयास करते हैं। पर वह भी कहीं न कहीं दलित विरोध पर ही खड़े हैं। राजनेता, बुद्धिजीवी, समाज सुधारक संत महात्मा आदि दलित विरोध में ही शामिल

स्वतन्त्र भारत में महिलाओं को संवैधानिक एवं कानूनी रूप से सशक्त बनाने हेतु संविधान के अनुच्छेद 14-15 में स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार देने का प्रावधान किया गया है। लेकिन क्या आज महिलाओं को भारतीय समाज में पुरूषों के बराबर अधिकार प्राप्त हैं? पुरूष प्रधान समाज में धार्मिक अनुष्ठानों व कर्मकाण्डों में भाग लेने हेतु, व्यवसाय, नौकरी, उच्च शिक्षा और किसी भी कार्य हेतु निर्णय लेने के लिए पुरूष वर्ग उत्तम व सर्वोपरि समझा जाता है। महिलाओं के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित मसलों में भी प्रायः पुरूष ही निर्णय लेता है।

नजर आते हैं। संत, भी ईश्वर भक्ति का पाठ पढ़ाते हैं, वर्ण–व्यवस्था और जातिभेद को समाप्त करने की कोई बात नहीं करते हैं।

दलितों की आर्थिक उन्नति का स्रोत सरकारी नौकरी है, दूसरों के घरों, खेतों या प्राइवेट कारखानों में काम करने से उनकी आजीविका तो चल जाती है किन्तु उनको बल नहीं मिलता। न ही उनके बच्चे उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं। न ही अन्य सुख सुविधाएं जुटा पाते हैं। यदि वह सरकारी नौकरियों में आते हैं तो उनके रहन–सहन का स्तर सुधर जाता है, और वह सम्भव सुविधाएं भी प्राप्त कर सकते हैं, वे स्वाभिमान और सम्मान के साथ जीते हैं या जीने की कोशिश करते हैं। परन्तु दलितों को सदैव स्वयं से भिन्न, निम्न, घृणित और अस्पृश्य मानने वाले सवर्ण हिन्दू समाज को यही सब स्वीकार्य नहीं है, सवर्ण दलित का सिर झुका हुआ देखना चाहते हैं। वह दलितों के स्वाभिमान के प्रतीकों पर प्रहार करता हैं। आर्थिक आधार को ध्वस्त करने की कुशासित चालें चलता है। सरकारी नौकरियों में दलितों के आरक्षण का विरोध इसी मुहिम का एक हिस्सा है। आरक्षण को मुद्दा बना कर सवर्ण हिन्दू समाज समय–समय पर माहौल को बना कर रखते हैं। आरक्षण विरोध के कई हिंसक उदाहरण देश और समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं।

संविधान में अब तक सैकड़ों संशोधन किए जा चुके हैं, बीतते समय और परिस्थितियों के अनुरूप जब भी सरकार द्वारा आवश्यक समझा गया संसद द्वारा उसमें संशोधन किए गए है। आगे भी होंगे, दलित समाज अपने अधिकारों को लेकर जागरूक है यह बात दलित विरोधी समाज समझने लगा है, इसलिए दलितों का आरक्षण समाप्त करने और संविधान समीक्षा की मांग की जाती है इसका मूल उद्देश्य संविधान को बदलकर एक नया संविधान बनाने का है। नए संविधान में दलितों के आरक्षण के मुद्दे को दरकिनार अथवा कम असरदार किया जा सकता है किन्तु दलितों की जागरूकता ने इस मुहिम को सफल नहीं होने दिया।

संविधान में अब तक सैकड़ों संशोधन किए जा चुके हैं, बीतते समय और परिस्थितियों के अनुरूप जब भी सरकार द्वारा आवश्यक समझा गया। संसद द्वारा उसमें संशोधन किए गए हैं। आगे भी होंगे, दलित समाज अपने अधिकारों को लेकर जागरूक हैं यह बात दलित विरोधी समाज समझने लगा है। इसलिए दलितों का आरक्षण समाप्त करने और संविधान समीक्षा की मांग की जाती है इसका मूल उद्देश्य संविधान को बदलकर एक नया संविधान बनाने का है। नए संविधान में दलितों के आरक्षण के मुद्दे को दरकिनार अथवा कम असरदार किया जा सकता है किन्तु दलितों की जागरूकता ने इस मुहिम को सफल नहीं होने दिया।

अधिकतर आरक्षण पर हो रही बहसों का परिणाम यही सामने आता है कि आरक्षण के कारण 'प्रतिभा' की उपेक्षा की जाती है, और सभी को समान अवसर नहीं मिल पाता, नतीजा हुआ है कि भारतीय समाज आगे बढ़ने की बजाय पिछड़ता जा रहा है। भारतीय समाज का कोई भी तबका या व्यक्ति पिछड़ा हुआ है, तो उसके उत्थान के प्रति विधानमंडल और संसद को जिम्मेदार होना चाहिए। कोई भी भूखा–नंगा, कमजोर व्यक्ति कुछ कहे या न कहे, मगर संविधान व संसद को तो वह चुनौती देती ही है। भले ही उनके स्वरों की अपेक्षा कर दें।

वर्तमान में दलित समाज की प्रमुख समस्या 'पदोन्नति में आरक्षण' लागू करवाने एवं आरक्षण को कानून बनाने की हैं। पदोन्नति में आरक्षण लागू करने संबंधी विधेयक राज्य सभा में पहले ही पास हो चुका है लेकिन लोकसभा में पास होना अभी बाकी है। दलित जातियां आरक्षण में फंसकर जाति प्रथा को तोड़ने के क्रम से धीरे–धीरे पीछे हो रही हैं क्रान्ति करके भी अब स्थिति न के बराबर है आरक्षण दलित जातियों को सुविधापरस्त बना रहा है। इसके परिणाम स्वरूप ही दलितों की संघर्षात्मक संस्कृति को भी नुकसान पहुंच रहा है।

दलितों के लिए आरक्षण जरूरी है, बल्कि तेजी से विकास सुनिश्चित करने के लिए उनको और ज्यादा आरक्षण और अन्य सुविधाएं मिलनी चाहिए। ■

(लेखिका दिल्ली विश्वविद्यालय में शोधार्थी हैं)

हिन्दी के प्रति हमारी चेतना

■ **बलराम प्रसाद**

हर वर्ष सितम्बर माह में सरकार के समस्त मंत्रालय, विभाग, कार्यालय व उपक्रमों के लिए कार्यान्वयन हेतु प्रभावी राजभाषा नीति के तहत हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन का अनुपालन सुनिश्चित किया गया है। इसी को हिन्दी दिवस के रूप में भी मनाया जाता है। मानव जीवन में भाषा की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मानवीय सभ्यता के इतिहास में भाषा, इतिहास और संस्कृति का अमूल्य योगदान रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक हिन्दी दुनिया में तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा थी परन्तु आज स्थिति यह है कि वह दूसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा प्रयोक्ताओं को भी इसके साथ जोड़ लिया जाए तो हो सकता है कि हिन्दी दुनिया की प्रथम सर्वाधिक व्यवहृत भाषा सिद्ध हो। हिन्दी के इस वैश्विक विस्तार का बड़ा श्रेय भूमंडलीकरण और संचार माध्यमों के विस्तार को जाता है। यह कहना गलत न होगा कि संचार माध्यमों ने हिन्दी के विविधता पूर्ण सर्वसमर्थ नए रूप का विकास किया है।

अभिव्यक्ति कौशल के विकास का अर्थ भाषा का विकास ही है। अगर ठीक से देखा जाए तो यहां यह भी जोड़ा जा सकता है कि बाजारीकरण के साथ विकसित होती हुई हिन्दी की अभिव्यक्ति क्षमता भारतीयता के साथ जुड़ी हुई है। यदि इसका माध्यम अंग्रेजी हुई होती तो अंग्रेजियत का प्रचार होता। लेकिन आज प्रचार माध्यमों की भाषा हिन्दी होने के कारण वे भारतीय परिवार और सामाजिक संरचना की उपेक्षा नहीं कर सकते। इसका अभिप्राय है कि हिंदी का यह नया रूप बाजार सापेक्ष होते हुए भी संस्कृति निरपेक्ष नहीं हैं विज्ञापनों से लेकर धारावाहिकों तक के विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि संचार माध्यमों की हिन्दी अंग्रेजी और अंग्रेजियन की छाया से मुक्त है और अपनी जड़ों से जुड़ी हुई है। अनुवाद को इसकी सीमा माना जा सकता है। फिर भी भारत में वह डेढ़-दो प्रतिशत की ही भाषा है। इसीलिए भारत के बाजार की भाषाएं भारतीय भाषाएं हो चुकी हैं बाजार और हिन्दी की उस अनुकूलता का एक बड़ा उदाहरण यह हो सकता है कि पिछले पांच-सात वर्षो में संचार माध्यमों पर हिन्दी के विज्ञापनों के अनुपात में सत्तर प्रतिशत उछाल आया है। इसका कारण भी साफ है। भारतीय रूपी समझ और आस्था अंग्रेजी की अपेक्षा अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा से अधिक प्रभावित होती है, इस नए भाषिक परिवेश में विभिन्न संचार माध्यमों की भूमिका केन्द्रीय हो गई है।

किसी भी व्यवस्था के लिए भाषा के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता अपितु अगर अंतराष्ट्रीय व्यवसाय के तौर पर इसका महत्व और भी बहुत बढ़ जाता है। वैसे व्यक्ति समाज के बिना अधूरा है वैसे ही व्यवसाय के लिए भाषा अपनी अलग भूमिका प्रदान करती है। हमारा देश मुख्यत: हिन्दी भाषी देश है इसलिए व्यवसाय विकास में उसका और महत्व बढ़ जाता है। जैसा कि कहा गया है किसी देश की उन्नति उसकी भाषा में निहित होती है। यदि भाषा की नींव ठीक प्रकार से डाली जाती है, तो उस देश की आर्थिक स्थिति जो कि व्यवसाय के साथ जुड़ी है अपनी चरम सीमा पर होती। आज के इस उदारीकरण के दौर में जब एक देश का व्यापारी किसी व्यापार के लिए अन्य देशों में जाता है तो भाषा का महत्व और भी व्यापक हो जाता है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जो एक-दूसरे को समझने एवं मिलने का मौका प्रदान करती है।

दुनिया के तमाम विकसित देश, जिसमें सुपर पॉवर अमेरिका, फ्रांस, जापान, जर्मनी, इटली, ब्रिटेन, चीन, रूस देशों सहित अन्य

देशों ने आज यह समझ लिया है कि भारत में अगर उन्हें अपना व्यापार बढ़ाना है तो ऐसा हिन्दी भाषा के माध्यम से ही संभव है। यही वजह है कि आज भारत में विद्यमान अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों चाहे वे मोबाइल, कम्प्यूटर एवं अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से संबंधित हों अथवा दिन-प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली वस्तुओं से संबंधित हों अथवा दिन प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली वस्तुओं से संबंधित हो, एक बात बड़ी स्पष्ट है कि बाजार में उपलब्ध उपयुक्त सामानों वस्तुओं की जानकारी हिन्दी में प्रकाशित बुकलेट एवं फोल्डर्स के माध्यम से आम जनता को उपलब्ध कराई जा रही है।

ऐसा देखने में आया है कि विगत वर्षो में लोगों का झुकाव भी हिन्दी के प्रति दिनोदिन बढ़ता रहा है तथा लोग हिन्दी को अपना रहे हैं। इसीलिए हिन्दी एक व्यापार की भाषा भी बनकर उभरी है। ऐसे लोग जो हिन्दी को अपनाने में स्वयं को हीन व ठगा हुआ महसूस करते हैं, आज वे हिन्दी को अपना कर गर्व महसूस करते हैं। आज अखबारों एवं मीडिया - चैनलों में हिन्दी की भरमार है और बढ़े-बढ़े प्रकाशक अंग्रेजी छोड़ हिन्दी प्रकाशन में रूचि लेकर कारोबार को बढ़ावा दे रहे हैं।

हिन्दी का चमत्कार ऐसे ही नहीं हुआ सरकार के अथक प्रयास एवं राजभाषा नीति की आवश्यकता के कारण आज हिन्दी सभी लोगों की भाषा बन गई है। आज उच्च से उच्च स्तर की परीक्षा में हिन्दी को अपनाना इसका उदाहरण है। इसका श्रेय उन हिन्दी लेखकों, चिन्तकों व प्रचारकों को भी जाता है जिन्होंने मेहनत कर हिन्दी को एक व्यापारिक भाषा बनाने में मदद की है। इसलिए आज देश ही नहीं विदेशों के विश्वविद्यायलों में हिन्दी भाषा पढ़ाई जाती हैं।

भारतीय संविधान की धारा 351 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि भारत सरकार जिम्मेदारी से हिन्दी का प्रचार-प्रसार करे। संविधान के अनुच्छेद 343 में हिन्दी को देवनागरी लिपि में राजभाषा का दर्जा दिया गया है। इसमें यह भी कहा जाता है कि संविधान लागू होने के 15 साल बाद तक राजकाज में अंग्रेजी भाषा का तब तक इस्तेमाल किया जाए जब तक हिन्दी भाषा अंग्रेजी का स्थान न ले ले। भारत को ब्रिटिश, हुकूमत की बेड़ियों से मुक्त हुए 67 साल हो गए है परन्तु हिन्दी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने की स्थिति में ही है। इसे राष्ट्रभाषा का दर्जा अब तक नहीं मिला है। हम आज भी अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि हम इस भाषा को प्रचार-प्रसार और उत्थान के लिए योजनाबद्ध तरीके से जुटे हुए नहीं हैं।

ऊपरी तौर पर हम यह जरूर कह देते हैं कि हिन्दी हमारी मातृभाषा है, लेकिन आम बोलचाल और व्यवहार में तो हम ज्यादातर अंग्रेजी का ही इस्तेमाल कर रहे हैं। जिस देश की भाषा हिन्दी हो उसी देश में इसके अस्तित्व के लिए संघर्ष हो, हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया जाता हो, हिन्दी दिवस मनाने की जरूरत महसूस किया जाता हो, हिन्दी सप्ताह का आयोजन करना पड़ता है और पखवाड़े मनाने की जरूरत पड़े, यह इसकी दुर्गति नहीं तो क्या है? इसका कारण खोजने और अपने मन को टटोलने की जरूरत है, विशेषकर उन लोगों को जो उच्च शिक्षित हैं। क्या हम हमारी मातृभाषा के साथ न्याय कर रहे हैं, क्या हम सभी अपने घर-परिवार आस-पास और दफ्तर में हिन्दी का इस्तेमाल कर रहे हैं? क्या हमारी अपनी संतान को हिन्दी आएगी! ऐसा क्यों है? कारण स्पष्ट है। आज संचार क्रांति के दौर में अंग्रेजी स्टेट्स सिम्बल बनी हुई है। शिक्षा और ज्ञान का पैमाना अंग्रेजी माध्यम स्कूल में ही दाखिला दिलाने को आतुर रहते हैं ताकि वह फर्राटे से अंग्रेजी सीख सकें, बोल सकें। हमारा अपना ही स्टेन्डर इतना गिरा हुआ है कि हम नर्सरी से ही बच्चों को जोर देकर 'ए' से एप्पल, 'बी' से बेबी, 'सी' से कैट सिखाया जा रहा है, किन्तु 'अ' से अनार 'आ' से आम, 'इ' से इमली सिखाने में हमें शर्म और लज्जा महसूस हो रही है। अभिभावकों को डर है कि कहीं उनकी संतान अंग्रेजी के अभाव में आधुनिक दौर से कदमताल करने में पिछड़ न जाए। अभिभावकों को अंग्रेजी के फोबिया से उबरना होगा। जितना जोर वे अंग्रेजी पर दे रहे हैं उससे कुछ ज्यादा जोर हिन्दी पर भी देना होगा ताकि बच्चे मातृभाषा से विमुख न हों, दूर न हों। यदि आप हिन्दी का विकास चाहते हैं तो स्कूल में बच्चा भले अंग्रेजी सीखे, लेकिन उसे घर में हिन्दी का वातावरण उपलब्ध कराना होगा।

इतनी विपरीत परिस्थितियों में हिन्दी का यह विकास एक क्रांति के समान है। निश्चित ही यह बाजार की ताकत भी है। हिन्दी भाषा की ताकत को आज व्यवसायी वर्ग समझ पा रहे हैं उससे हिन्दी की असलियत को आंका और व्यवसाय की भाषा के रूप में इसको अपनाया। हिन्दी चैनलों का उदगम इसकी एक जीती जागती मिशाल है। आज हिन्दी के अधिकतर अखबार व पत्रिकाएं अपने कार्यक्षेत्र में शीर्ष स्तर पर कार्य कर रहे हैं। भारत में लगभग 80 प्रतिशत पाठक आज हिन्दी के अखबार को अपना रहे हैं। मतलब उनका हिन्दी के प्रति रूझान बढ़ा है। इसके पीछे भी केवल हिन्दी की ताकत है। आज भारत की आबादी 130 करोड़ के आस-पास है उनकी अपनी भाषाएं हैं लेकिन भारतवंशी के रूप में जो चीज उन्हें इकट्ठा करती है वह हिन्दी ही है। आज अमेरिका, इंग्लैण्ड और अन्य यूरोप के देशों में भारतवासियों की नई पीढ़ी अपनी मातृ भाषा के लिए

काफी सचेत हैं यही कारण है कि आज वे सभी हिन्दी की ओर टकटकी लगाए हैं तथा हमारी तरफ आशा भरी निगाहों से देख रहे हैं।

आज विश्व में हिन्दी का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है लेकिन विडम्बना है कि हम अपने आप को इसके लिए तैयार नहीं कर पा रहे हैं।

हर रोज नये-नये शब्दों व मुहावरों का उदगम हो रहा है लेकिन हम हाथ पर हाथ धरे हैं और हमारे पास इन्हें ज्यों के त्यों अपनाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है परिणाम स्वरूप आज हमारी हिन्दी जटिल हो रही है। हमारी वर्तनी को लागू करने वाला या सिखाने वाला नहीं है। क्योंकि वर्तनी में एक रूपता का अभाव है। परन्तु यदि है भी तो कोई इसका पूरी तरह से पालन नहीं करता। भाषा की पढ़ाई का स्तर पहले ही खराब हो चुका है। इसलिए आज पत्रकारिता में आने वाले युवाओं का भाषा ज्ञान अपयौवन होता है लेकिन फिर भी सोशल मीडिया ई-मेल, एसएमएस आदि अनूठा कदम है।

यह भी एक विचारणीय एवं सोचनीय पक्ष है कि आज के दौर में हिन्दी में बतियाने वालों को पिछड़ा और हीन भावना से देखा जाता है, विशेषकर उच्च्च शिक्षित और समृद्ध वर्ग में। आज हमारे समाज और व्यवहार में लोग जितना अंग्रेजी में बात करके गर्व महसूस करते हैं उतना ही हिन्दी में बात करते हुए शर्माते हैं। यदि समाज में जब कुछ लोग आपस में अंग्रेजी में बतिया रहें हों और उनके बीच अचानक आकर कोई हिन्दी में बात करने लगे तो अंग्रेजी पसंद हिन्दुस्तानी लोगों के चेहरों पर कुटिल भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाते हैं। हो सकता है ऐसा आप के साथ भी हुआ हो। ऐसे समूह में हिन्दी बोलने वाले को निहायत पिछड़ा और गंवार समझा जाता है, भले ही उसे अंग्रेजी आती हो। यही नहीं जब वह हिन्दी प्रेमी उस समूह से विलग होकर चला जाता है तब ये अंग्रेज पसंद हिन्दुस्तानी उस शख्स की खिल्ली उड़ाने से बाज नहीं आते। यह कोरा सच है और इसे कत्तई इन्कार नहीं किया जा सकता कि यही इस देश की विडम्बना है। हिन्दी भाषी लोगों की हिन्दी के प्रति श्रद्धाहीनता है। यही मानसिकता हिन्दी के विकास में सबसे बड़ी बाधक बनी हुई है।

हिन्दी के विकास के लिए सरकार काफी कुछ कर रही है परन्तु वह काफी कुछ है नहीं और कभी-कभी ये लगता है हम जड़ों की बजाय फूल-पत्तों में ही पानी देकर काम चला लेना चाहते हैं। आजादी के तुरन्त बाद जब हिन्दी के कार्य को आगे बढ़ावा दिया गया, दिया जाना चाहिए था तो कुछ लोगों को लगा कि यह एक कूप मण्डूकों तथा संस्कृत के कठिन शब्दों वाली भाषा है जिसका प्रयोग एक हीन भावना को जन्म देने वाला है। लेकिन इसके बावजूद कुछ लोगों को आज भी व्यवसायिक कार्यो में हिन्दी को व्यवसाय एवं दिन प्रतिदिन के कार्यो में अपनाने की आवश्यकता है।

हम सब भारतवासी हिन्दी को अब यूनेस्को की भाषा बनाना चाहते हैं परन्तु यह तभी संभव है जब हम अपना सारा मौलिक कार्य हिन्दी में करें और इसे वह स्थान दें जिसकी यह अधिकारिणी है।

'भारत' और हिन्दी के लिए एक अद्भुत, आश्चर्य और चकित कर देने वाली सुखद बात यह है कि वर्तमान माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने दुनिया के सुपर पॉवर देश अमरीका में संयुक्त राष्ट्र महाअधिवेशन को हिन्दी में संबोधित कर पूरी दुनिया को 'भारत' और 'हिन्दी' की महत्ता को मज़बूती से पेश किया। यह देश और राष्ट्रभाषा के लिए एक इतिहास रचने से कम नहीं हैं। देश का और हिन्दी का गौरव जब अमेरिका में बढ़ाया तब प्रत्येक हिन्दुस्तानी में हिन्दी के प्रति विशेष आदर और सम्मान का भाव पनपा और यह सुख हर भारतवासियों के चेहरे पर देखा जा सकता है। न्यूयार्क के मेडिसन स्क्वायर पार्क में भारतीय प्रवासियों को भी हिन्दी में संबोधित किया और भारतीय प्रवासियों ने भी उनसे हिन्दी में बात की तो मन को भी बड़ी तसल्ली मिली। अपने देश के प्रति उनका सकारात्मक रूख मन को सुकून देने वाला है कि वे हिन्दी से कितना प्यार करते हैं।

हम सब भारतवासी हिन्दी को अब यूनेस्को की भाषा बनाना चाहते हैं परन्तु यह तभी संभव है जब हम अपना सारा मौलिक कार्य हिन्दी में करें और इसे वह स्थान दें जिसकी यह अधिकारिणी है। किसी विद्वान ने सच ही कहा है कि जिस व्यक्ति को अपने घर में सम्मान नहीं मिलता उसे अंततः बाहर भी दुत्कारा जाता है। यह बात हमारी हिन्दी पर भी लागू होती है। अतः आइए हम सब मिलकर हिन्दी को अपने जीवन में सच्चे मन से अपनाएं। हम जहां कहीं भी रहें अपनी मातृभाषा हिन्दी को न भूले और इसके उत्थान में अहम योगदान करें। हिन्दी में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने के सभी गुण मौजूद हैं और इसका भविष्य काफी उज्जवल है। इसके उज्जवल भविष्य को हम ही सवारें। जह हिन्दी! जय हिन्दी!!■

(लेखक राष्ट्रीय जनसहयोग एवं बाल विकास संस्थान दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र, बेंगलूरु में कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक हैं)

भारतीय संविधान में राजभाषा हिन्दी

■डॉ॰ पूरनचन्द टण्डन

हिन्दी : वर्तमान की चुनौतियां

आज, परिवेश, स्थितियां एवं अपेक्षाएं हिन्दी के नाम पर पढ़े-पढ़ाए जाने वाले साहित्य से हटकर मासिक अध्ययन तथा उसके व्यवहारिक या कामकाजी रूप पर भी गंभीरता से विचार करने के लिए प्रेरित कर रही है। केवल हिंदी-साहित्य की कविताएं, कहानियां, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, जीवनी, डायरी, साक्षात्कार, आलोचना-समीक्षा तथा आत्मकथा आदि के लेखन-पठन मात्र से अब इस दिन-प्रतिदिन, व्यावसायिक एवं प्रतियोगी हो रहे समाज-संसार में काम नहीं चल सकता। 'नैतिक-शिक्षा' के विषय में विचार-चिंतन जितना आवश्यक समझा जाता है 'शिक्षा की नैतिकता के विषय में भी उतनी ही गंभीरता से विचार करना अब अनिवार्य बन गया है। किसी भी भाषा में लिखे जा रहे साहित्य पर तथा उसके पाठकों पर जो आक्रमण पुस्तक-प्रकाशन की महंगाई ने, संचार-माध्यमों की स्वेच्छारिता ने तथा आज के मशीनी-युग में दिन-रात धनार्जन की भाग-दौड़ के कारण पैदा हो रहे समयाभाव ने किया है, वह तो चिंतनीय है ही, साथ ही हिंदी पठन-पाठन एवं लेखन करने वालों के लिए दिन-प्रतिदिन सीमित होते जा रहे रोजगार-अवसरों ने भी समस्त हिंदी समाज के सम्मुख एक संकट पैदा कर दिया है।

हिंदी समाज की लंबी उदासीनता तथा अकर्मण्यता का दुष्परिणाम यह हुआ कि हिंदी के प्रति रूचि-रूझान रखने वाले तो विमुख होने ही लगे, साथ ही जो हिन्दी-सेवा और सृजन में जुटे थे उनके भीतर भी एक हीनता का बोध घर करता चला गया।

प्रगति के अवसर एवं आयाम खुलते न देखकर हिन्दी के प्रबल पक्षधरों ने भी अपने बच्चों को 'केक-चॉकलेट और आइस्क्रीम कल्चर' वाले पब्लिक स्कूलों की अंग्रेजियत का शिकार होने के लिए भेजना प्रारंभ कर दिया। परिणामतः हिन्दी के और हिन्दी वालों के प्रति समाज में एक नकारात्मक उदासी तथा कहीं-कहीं हास्यात्मक परिवेश बनता चला गया।

प्रतियोगी समाज में अब धीरे-धीरे जागृति आई है और हिन्दी के प्रति यह सौतेला व्यवहार देखकर विद्वत समाज चिंतित होने लगा है। जब परिस्थितियां और अपेक्षाओं ने बाध्य किया तथा ऐसे में हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी सृजन को रोजगारोन्मुख करने का संकल्प लिया गया।

शिक्षा एवं समाज के इस नवीन दृष्टिकोण ने शिक्षण एवं साहित्य का माध्यम मात्र बनी रहने वाली हिन्दी भाषा के मासिक अध्ययन-विवेचन के साथ-साथ उसके प्रयोग एवं व्यवहारमूलक द्वार भी खोले। हालांकि भाषा तथा भाषा-विज्ञान का अध्ययन-अध्यापन विषय के रूप में बहुत पहले से हो रहा था किंतु भाषा के कामकाजी रूपों पर, उसके व्यवहारिक व्यवसायिक एवं प्रशासनिक आयामों पर ध्यानाकर्षण की आवश्यकता महसूस की गई। सरकारी या गैर-सरकारी कार्यालयों में, शिक्षण संस्थानों में, व्यावसायिक संस्थाओं या केन्द्रों में हिन्दी का प्रयोग किए जाने पर समस्त कार्यालयी कार्यों को हिन्दी में ही किए जाने और निपटाने पर बल दिया जाने लगा। परिणामतः हिन्दी राज-काज के समस्त कार्यों के निपटाने का माध्यम बनी और कार्यालयी हिन्दी के कई रूप तथा प्रकार उभरकर सामने आ गए। जन-जन में सम्पर्क स्थापित करने वाली, पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने वाली **'राष्ट्रभाषा हिन्दी'** इसी आधार पर **'राजभाषा हिन्दी'**

बन गई। संसद में, सभी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी, अनुदान-प्राप्त, गैर-सरकारी कार्यालयों में बैंक, रेलवे, बीमा कंपनियों में, विधि, चिकित्सा, विज्ञान, पत्रकारिता तथा दूर-संचार केन्द्रों में हिन्दी का प्रयोग किया जाने लगा।

हिन्दी भाषा और उसके विविध रूप

हिन्दी भाषा मूलत: एक ही है। लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से इसमें पर्याप्त विविधता आई है। समाज में इसके प्रयोग के वैविध्य के कारण भी ऐसा हुआ है। विभिन्न रूपों, स्तरों और भूमिकाओं में भाषा के विभिन्न नाम हो जाते हैं और इनसे कुछ हद तक विधिता भी पैदा हो जाती है। हिन्दी का अखिल भारतीय रूप वास्तव में यह रूप होगा, जिसे हिन्दुस्तानी कहा जा सकता है। वर्तमान युग में हर आधुनिक भाषा की ज्ञान-विज्ञान की भाषा, के रूप में एवं अहम भूमिका है विज्ञान की भाषा विधि की भाषा प्राय: कठिन हुआ करती है; क्योंकि इसकी शब्दावली पारिभाषिक होती है और इसकी वाक्य संरचना में बहुत से रूढ़ तत्व आ जाते हैं लेकिन आधुनिक भाषाएं इसे बोलचाल से भिन्न अलग भाषा रूप नहीं मानतीं। जैसा कि प्रारंभ में कहा भी गया है कि हिन्दी को उसके विविध रूपों में, भिन्न परिप्रेक्ष्य में जब हम देखते हैं तो कहीं वह **संपर्क भाषा**, कहीं **राजभाषा**, कहीं **प्रयोजनमूलक** या **व्यवहारमूलक भाषा**, कहीं **मानक भाषा** तो कहीं **वैश्विक भाषा** के रूपों में दृष्टिगत होती है।

राजभाषा के रूप में

राजभाषा भी संपर्क भाषा का ही एक औपचारिक रूप है। हिन्दी भारत की राजभाषा है, जिसका उल्लेख संविधान में किया गया है। राजभाषा की भूमिका में हिन्दी केन्द्र सरकार के कार्यालयों की भाषा है, राज्यों के विधानमंडलों और संसद को अभिलेखों (रिकॉर्डस) के स्तर पर जोड़ने वाली भाषा है, देश के कानून की भाषा है और उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय को अभिलेखों के स्तर पर जोड़ने वाली भाषा है। राजभाषा विशिष्ट कार्य क्षेत्रों की भाषा है, इसलिए इसकी शब्दावली सामान्य बोलचाल की शब्दावली से भिन्न होती है। यह लिखित कार्यक्रमों की भाषा है इसलिए इसकी भाषा में रूढ़ उक्तियां आती हैं।

हिन्दी को राजभाषा के रूप में विकसित करने के दौरान राजभाषा हिन्दी का स्वरूप भी विकसित किया गया। प्रशासन, विधि आदि क्षेत्रों के माध्यम से नियम पुस्तिकाएं तैयार की गयी। अपने इस नए स्वरूप के कारण राजभाषा हिंदी लोगों को कठिन लगी और लोगों ने यह अनुभव किया कि यह बोलचाल की भाषा से भिन्न कोई भाषा है। यहां यह ध्यातव्य है कि उपयोग के साथ-साथ राजभाषा निखरेगी और लोगों को इस भाषा में काम करने की आदत पड़ेगी तो यह उतनी कठिन नहीं लगेगी, लेकिन राजभाषा हिन्दी नाम की कोई अलग कृत्रिम **भाषा** नहीं है।

राजभाषा हिन्दी से अभिप्राय

सन् 1947 तक ब्रिटिश शासन के दौरान देश की राजभाषा अंग्रेजी थी। उस हिन्दी तथा देश की अन्य भाषाओं का राज कार्यो में प्रयोग लगभग शून्य था। सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ और 26 जनवरी, सन् 1950 को गणतंत्र का संविधान लागू हुआ। संविधान में यह उल्लेख था कि हिन्दी, जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती हो, इस देश की राजभाषा है लेकिन राजभाषा के प्रकार्य के निर्वाह में हिन्दी भाषा की तैयारी को देखते हुए यह भी उल्लेख था कि अंग्रेजी 1965 तक राजभाषा के रूप में पूर्ववत् काम में आती रहेगी और इस अवधि में हिन्दी भाषा में साहित्य-निर्माण के साथ-साथ किन्ही क्षेत्रों में उसके प्रयोग के प्रयत्न किये जाते रहेंगे। 1963 में राजभाषा अधिनियम द्वारा हिन्दी को एक मात्र राजभाषा घोषित किया गया था। लेकिन भारत के किन्हीं प्रदेशों में अंग्रेजी को हटाने के विरोध में उठ खड़े आंदोलन के कारण इस अधिनियम में 1967 में संशोधन किया गया और अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में आगे तक बनाये रखने की नीति अपनाई गई।

राजभाषा का प्रकार्य यह स्पष्ट करता है कि राज-काज के समस्त कार्य उसी माध्यम से हों। राजभाषा घोषित किये जाने के कारण हम सरकार से सिर्फ दो स्वीकृत राजभाषाओं अर्थात् हिन्दी और अंग्रेजी में पत्राचार कर सकते हैं। लेकिन एक गणतंत्र होने के नाते व्यक्तियों के भाषा स्वातंत्र्य पर भी अंकुश नहीं होना चाहिए। लोगों को यथा संभव अपनी भाषा में काम करने की सुविधा और छूट मिलनी चाहिए। इस कारण राजभाषा के इस देश में दो स्तर गिनाए जाते हैं। हिन्दी तथा अंग्रेजी संघ की राजभाषा है। प्रदेशों की राजभाषा या राजभाषाएं-निश्चित करने का दायित्व प्रदेश की विधायिका का है। इस तरह कोई तमिल भाषी अपने प्रदेश की सरकार के साथ प्रदेश की राजभाषा में पत्राचार कर सकता है। उसके लिए यह भी कहीं अनिवार्य नहीं है कि वह अंग्रेजी या हिन्दी का प्रयोग करे। हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित करने का एक आधार यही है कि इस बहुभाषी देश में विभिन्न भाषाएं

हिन्दी को राजभाषा के रूप में विकसित करने के दौरान राजभाषा हिन्दी का स्वरूप भी विकसित किया गया। प्रशासन, विधि आदि क्षेत्रों के माध्यम से नियम पुस्तिकाएं तैयार की गयी।

बोलने वाले व्यक्तियों का संपर्क सूत्र है। हिन्दी इस गणतंत्र की अधिसंख्यक आबादी की भाषा है। इसलिए इस भाषा से देश को मानसिक रूप से जोड़ने को यह दायित्व दिया गया है।

राजभाषा का तात्पर्य राज्य के तीन प्रमुख अंगों की भाषा से है। ये प्रमुख अंग हैं-संसद, अदालतें और प्रशासन या सरकार। इन तीनों अंगों का संबंध पूरे देश से है। संसद पूरे देश के लिए कानून बनाती है और प्रदेशों के विधान-मंडल अपने-अपने स्तर पर अपनी भाषा में काम करते हैं। न्यायपालिकाओं को समन्वित करने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रदेश का सबसे बड़ा न्यायालय (उच्च न्यायालय) और देश का उच्चतम न्यायालय अपने समस्त कार्य देश की राजभाषा में ही करें। इसी तरह भारत सरकार के कार्यालय (डाक-तार विभाग, रेल, आयकर विभाग आदि) पूरे देश में काम करते हैं। यहां भी आवश्यक है कि उनका काम देश की राजभाषा में हों जिससे संपर्क न टूटे। इस दृष्टि से राष्ट्र अंगों में समन्वय स्थापित करने का या संपर्क कायम करने का दायित्व देश की राजभाषा पर है और यह इसका प्रमुख प्रकार्य है।

राजभाषा हिन्दी के लिए किये गये संवैधानिक प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 343 (2) के अनुसार यह प्रावधान किया गया है कि संविधान के प्रारंभ से 26 जनवरी, 1965 तक सभी राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का यथावत् प्रयोग होता रहेगा। अंग्रेजी भाषा में लंबे समय से काम-काज करने कराने वाले प्रशासकों, कर्मचारियों आदि के नए भाषा माध्यम हिन्दी को अपनाने के लिए पर्याप्त समय देना उचित समझा गया। यहां पर भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार भी दिया कि वे पन्द्रह वर्षों की कालावधि में संघ के किसी राजकीय प्रयोजन के लिए हिन्दी भाषा एवं भारतीय अंकों के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकेंगे।

संविधान के अनुच्छेद 343(3) में संसद को यह अधिकार भी दे दिया गया कि पन्द्रह वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद भी वह चाहे तो अंग्रेजी के प्रयोग को यथावत् रखने के विधि द्वारा कोई उपबंध कर सकेगी। इस प्रकार के प्रावधान से हिन्दी को राजभाषा का गौरव प्रदान करने के पश्चात् भी अवरोधात्मक संवैधानिक उपबन्धों का सामना करना पड़ा। ऐसी विचित्र-सी व्यवस्था ने अप्रत्यक्ष रूप से राजभाषा हिन्दी के रूप में संघीय प्रयोग एवं व्यवहार के सम्मुख अनिश्चय की स्थिति बन गई और दूसरी तरफ अंग्रेजी के पक्षधरों के लिए अंग्रेजी के निर्बाध प्रयोग का लम्बा रास्ता खोल दिया। ऐसे में हिन्दी को सुदीर्घ अनिश्चितता मिली और अंग्रेजी को सुनहरा भविष्य। वास्तव में संविधान बनाने वालों ने अनुच्छेद 343 की धारा (1) के अन्तर्गत हिन्दी को राजभाषा का जो पद-गौरव दिया उसे उसी अनुच्छेद की तीसरी धारा के द्वारा निष्प्राण कर दिया।

संविधान के अनुच्छेद 344 के द्वारा राष्ट्रपति महोदय को यह आदेश दिया गया कि संविधान के प्रथम पांच वर्ष तथा दस वर्ष के पश्चात् राजभाषा आयोग को नियुक्ति करें। इस आयोग का मुख्य संविधिक अभिप्राय यह था कि वे राष्ट्रपति को संघ के सरकारी कार्यों के लिए हिन्दी के प्रयोग के सुनिश्चित अथवा सीमित करने या उस प्रतिबन्ध लगाने के लिए संस्तुति करें। इन आयोगों की सिफारियों पर विचार करने के लिए तथा अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रदान करने के लिए संसद सदस्यों की एक समिति की स्थापना का भी प्रावधान इसी अनुच्छेद में किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 345 में यह प्रावधान है कि राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा एक या एकाधिक प्रादेशिक भाषाओं अथवा हिन्दी को सरकारी प्रयोजनों के लिए स्वीकार कर सकेगा। अनुच्छेद 346 में यह साफ-साफ आदेश है कि एक राज्य तथा दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य एवं संघ के मध्य पत्राचार में संघ की राजभाषा का ही प्रयोग होगा। अनुच्छेद 346 के अनुसार यदि किसी राज्य के अभिज्ञात करना चाहे तो राष्ट्रपति उस भाषा को सरकारी अभिज्ञा देने का अधिकारी है।

संविधान के अनुच्छेद 348 में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयें इत्यादि की भाषा का भी प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अनुसार जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करें तक विधेयकों, अधिनियमों, अध्यादेशों एवं आदेशों तथा नियमों-विनियमों के प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में ही होंगे।

संविधान के अनुच्छेद 349 में यह व्यवस्था है कि संविधान के शुरू के पन्द्रह वर्षों की कालावधि तक अंग्रेजी के स्थान पर किसी अन्य भाषा का पाठ प्राधिकृत पाठ नहीं माना जाएगा, किन्तु किसी अन्य भाषा के प्राधिकृत पाठ के लिए राष्ट्रपति, भाषा आयोग की संस्तुतियों एवं संसदीय समिति की प्रतिवेदन पर विचार करने के बाद अपनी स्वीकृति दे सकते हैं।

संविधान के अनुच्छेद 350 के अनुसार कोई व्यक्ति अपनी शिकायत के समाधान के लिए संघ या संबद्ध राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी भी भाषा में आवेदन कर सकता है। इस व्यवस्था में भाषायी अल्पसंख्यकों के अधिकार पूरी तरह सुरक्षित किए गए हैं।

संविधान का अनुच्छेद 351 अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार संघ सरकार का यह कर्त्तव्य है कि यह हिन्दी को एक ऐसी सर्वमान्य राष्ट्रीय भाषा के रूप में विकसित करे जिसका पूरे राष्ट्र में गर्व सहित प्रयोग किया जा सके और वह भारत की मिश्रित संस्कृति के सभी तत्वों को अभिव्यक्त कर सके। इसके लिए हिन्दी में अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण

कर उसे समृद्ध किए जाने का भी सुझाव है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संघ भाषा के रूप में अथवा अष्टम अनुसूची में उल्लिखित हिन्दी के स्वरूप तथा प्रकृति में कोई अन्तर नहीं है। अनुच्छेद 351 में भी स्पष्टत: लिखा गया है कि हिन्दी की प्रकृति को किसी प्रकार स्वीकृत नहीं किया जाएगा। इसके अलावा अष्टम अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषाएं भारतीय भाषाएं है न कि प्रादेशिक। जैसे संस्कृति किसी राज्य की भाषा विशेष न होकर भी भारतीय भाषा है। अतएव हिन्दी के स्वरूप, प्रकृति एवं संदर्भ में विचार करते समय उसके किसी प्रादेशिक रूप को प्राधान्य न देकर उसके सार्वदेशिक रूप का निर्माण करना ही श्रेयस्कर है।

अत: हम कह सकते हैं कि सरकार ने अपनी तरफ से हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा उसके अधिक प्रयोग के लिए भरपूर प्रावधान किए हुए हैं। संघ की राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए संविधान के कई अनुच्छेदों में निर्देश दिए गए हैं। अनुच्छेद 343 से अनुच्छेद 351 इस संदर्भ में विशेष रूप से देखे जा सकते हैं। जो इस प्रकार हैं:

अनुच्छेद 343 : संघ की राजभाषा हिन्दी

1. संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

2. खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से पन्द्रह वर्ष की अवधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिए ऐसे प्रारंभ के ठीक पहले यह प्रयोग की जाती थी। परन्तु राष्ट्रपति उक्त अवधि में आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

3. इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी संसद उक्त पन्द्रह साल की कालावधि के पश्चात विधि द्वारा-

(क) अंग्रेजी भाषा, अथवा

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसा कि ऐसी विधि में उल्लिखित हो।

अनुच्छेद 344 : राजभाषा के लिए राजभाषा का आयोग और संसदीय समिति

1. राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात् ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा, एक आयोग गठित करेगा जो एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलाकर बनेगा जिनको राष्ट्रपति नियुक्त करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

2. आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि यह राष्ट्रपति को-

(क) संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग,

(ख) संघ के सभी या किन्ही शासकी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधनों,

(ग) अनुच्छेद 348 में उल्लिखित सभी या किन्ही प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा,

(घ) संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप,

(ड॰) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और उनके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्देशित किए गए किसी अन्य विषय, के बारे में सिफारिश करे।

3. खंड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोक सेवाओं के संबंध में अहिंदी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक् ध्यान रखेगा।

4. एक समिति गठित की जाएगी जो तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी जिनमें से बीस लोकसभा के सदस्य होंगे और दस राज्यसभा के सदस्य होंगे जो क्रमश: लोकसभा के सदस्यों और राज्यसभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

5. समिति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह खंड (1) के अधीन गठिन आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करे और राष्ट्रपति को उन पर अपनी राय के बारे में प्रतिवेदन दे।

6. अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति खंड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस संपूर्ण प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश दे सकेगा।

अनुच्छेद 345 : प्रादेशिक भाषाएं

अनुच्छेद 346 और 347 के उपबंधों

हिन्दी के स्वरूप, प्रकृति एवं संदर्भ में विचार करते समय उसके किसी प्रादेशिक रूप को प्राधान्य न देकर उसके सार्वदेशिक रूप का निर्माण करना ही श्रेयस्कर है।

के अधीन रहते हुए राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए प्रयोग के निमित उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा। परन्तु जब तक राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिए इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

अनुच्छेद 347 : किसी राज्य के जनसमुदाय के किसी भाषा के संबंध में विशेष उपबन्ध

एतद् विषय की मांग किये जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाए कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाए तो वह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र, अथवा उसके किसी भाग में प्रयोजन के लिए जैसा कि वह उल्लिखित करे, राजकीय मान्यता दी जाए।

अनुच्छेद 348 : उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में तथा अधिनियमों, विधेयकों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा:

इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक

(क) उच्चतम न्यायालयों में प्रत्येक उच्च न्यायालयों में सब कार्यवाहियां,

(ख) जो-

1. विधेयक, अथवा उन पर प्रस्तावित किए जाने वाले संशोधन संसद के प्रत्येक सदन में पुनः स्थापित किए जाएं उन सबके प्राधिकृत पाठ,

2. अधिनियम संसद द्वारा या राज्य के विधानमंडल द्वारा पारित किए जाएं तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित किए जाएं, उन सबके प्राधिकृत पाठ, तथा

3. आदेश, नियम, विनियम और उपविधि इस संविधान के अधीन, अथवा संसद या राज्यों के विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन, निकाले जाए, उन सबके प्राधिकृत पाठ, अंग्रेजी भाषा में होंगे।

4. खंड (1) के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य के राज्यपाल या राष्ट्रपति की पूर्व सम्पति से हिन्दी भाषा का या राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होने वाले किसी अन्य भाषा का प्रयोग उस राज्य में मुख्य स्थान रखने वाले उच्च न्यायालय में की गई कार्यवाही के लिए प्राधिकृत कर सकेगा, परन्तु इस खंड की कोई बात वैसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, आज्ञाप्ति अथवा आदेश को लागू न होगी।

5. खंड (1) के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी जहां किसी राज्य के विधानमंडल ने उस विधानमंडल में पुनः स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड की खंडिका,

(3) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से अन्य किसी भाषा के प्रयोग के विहित किया है, वहां उस राज्य के राजकीय सूचना-पत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में अनुवाद उस खंड के अभिप्रायों के लिए उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

अनुच्छेद 349 : भाषा संबंधी कुछ विधियों के अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया

इस संविधान के प्रारंभ से 15 वर्षों की कालावधि तक अनुच्छेद 348 के खंड (1) में वर्णित प्रयोजनों में से किसी के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना न तो पुनः स्थापित और न प्रस्तावित किया जाएगा तथा ऐसे किसी विधेयक के पुनः स्थापित अन्यथा ऐसे किसी संशोधन के प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारियों पर, तथा अनुच्छेद के खंड (5) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर, विचार करने के पश्चात् ही राष्ट्रपति देगा।

अनुच्छेद 350

किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का प्रत्येक व्यक्ति को हक होगा।

अनुच्छेद 351 : हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश

हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना अष्टम अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उनकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा।

उसके पश्चात्, इसी प्रतिवेदन के आधार पर संसद ने राजभाषा अधिनियम पारित किया जिसके अन्तर्गत वर्तमान स्थिति यह है कि संघ की राजभाषा है किन्तु अंग्रेजी संघ की सह-राजभाषा भी है। व्यावहारिक स्तर पर अभी तक अंग्रेजी का प्रमुख राजभाषा के रूप में अब भी वर्चस्व कायम है किन्तु संविधान और विधान हिन्दी को संघ की राजभाषा की मान्यता देता है। उसके अनुपालन की जिम्मेदारी हम भारत के लोगों पर है। क्या हम इस स्थिति के प्रति सचेत होंगे? इक्कीसवीं शती का सूर्य हमारे जागरण की प्रतीक्षा में प्राची में अपनी लालिमा बिखेर रहा है। ■

उपन्यास अंश – तीसरी किस्त

अछूत

■ **मुल्क राज आनन्द**

"सड़क के किनारे चल, ओ कमीन कीड़े!" कोई उस पर चीख रहा था, "आवाज लगाता क्यों नहीं चलता, सूअर, अपने पास आने की सूचना क्यों नहीं देता? पता है, तूने मुझे छूकर अपवित्र कर दिया है। बिच्छू के बच्चे! अब जाकर नहाना पड़ेगा। और आज सुबह ही मैंने नया धोती कुरता बदला था।"

बक्खा झेंपता-सा हकबकाता खड़ा रह गया। वह बहरा-गूंगा हो गया था। उसकी सब चेतना नष्ट हो गई थी। केवल भय ने उसकी आत्मा को अभिभूत कर रखा था–केवल भय, विनय तथा दास्य-भाव। फटकार सुनने का उसे अभ्यास था। किन्तु इतनी आकस्मिकता से वह कभी नहीं पकड़ा गया था। विनय-भाव की असाधारण मुस्कान, जो प्रायः सवर्णों की उपस्थिति में उसके होंठों पर खेलती थी, अब अति तीव्र हो गई। उसने अपने सामने के आदमी की ओर मुख उठाया, पर आंखें झुकी ही रहीं। फिर चुपके-चुपके उसकी ओर झांका तो देखा कि उसकी लाल आंखें अंगारे उगल रही थीं।

"सूअर, कुत्ते, आवाज़ देता क्यों नहीं चलता, अपने आने की चेतावनी क्यों नहीं देता?" उसने बक्खा की आंख ऊपर उठते ही कहा। "जानवर! तुझे पता नहीं कि तू मुझे नहीं छू सकता?"

बक्खा का मुंह खुला पर शब्द एक भी नहीं निकला। वह क्षमा मांगने को था। उसके हाथ तो स्वतः ही जुड़ गए थे। उन पर उसने अपना सिर झुकाया और कुछ गुनगुनाया। पर उसके कहने पर उस आदमी ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अपने चारों ओर के वातावरण के खिंचाव में बक्खा इतना बौखला गया था कि न तो वह अपने कहे को दोहरा सका, न कोई स्पष्ट समझ में आने योग्य बात मुंह से निकाल सका। इस मूक क्षमा-याचना से वह आदमी कब सन्तुष्ट होने वाला था।

"कमीने कुत्ते!... सूअर के बच्चे!... कुतिये के पिल्ले!..." वह चिल्लाया। उसका भयंकर क्रोध उसकी ज़बान पर उबल रहा था और उन्माद की-सी दशा में बाहर झपटती उसकी भाषा सारहीनता में लड़खड़ा रही थी। 'मुझे...........मु.......झे... जाकर.....अ....भी अभी नहाना पड़ेगा। ... मैं काम ...काम पर जा रहा था.....अब तेरे...ते...रे....कारण ढेर होवेगी।"

क्या माजरा है यह जानने के लिए एक ओर आदमी पास रुक गया था। यह अमीर लाला लोगों की प्रायिक श्वेत वेशभूषा में था। पहले वाले ने उससे शिकायत करते हुए कहा–ज्यों-ज्यों वह बोल रहा था, क्रोध का वेग दबाने को भीचे हुए तथा कांपते हुए, उसके होंठ सांग की तरह हिसहिसा रहे थे–

"यह गन्दा कुत्ता मेरे से साफ़ भिड़ गया! कुतिया के पिल्ले ऐसी लापरवाही से गलियों में चलते हैं! सूअर कहीं का! बिना तनिक भी आवाज़ दिए अकड़ता चला जा रहा था।

बक्खा सिर झुकाए खामोश खड़ा रहा। कभी-कभी वह अपना भाल उपर उठा लेता था, जिस पर पसीने आ रहे थे तथा निराशा और निरर्थक विनय-भाव की ग्रन्थियां पड़ी हुई थी।

कुछ और आदमी आकर रुक गए कि मामला क्या है। भारतीय शहरों की गलियों में प्रायः पुलिस के सिपाही तो दिखाई ही नहीं देते। वे तो अपनी रिश्वत बटोरने में लगे रहते हैं। उनकी भरती ही इस सिद्धान्त पर होती है कि 'चोर-बदमाशों का पकड़ने का काम चोर-बदमाशों को ही सौंपो। राहगीरों ने बक्खा को चारों तरफ से घेर लिया। रहे वे कई गज दूरी पर ही, किन्तु अपराधी की डांट-फटकार में अभियोक्ता का हाथ बंटाते रहे तथा प्रोत्साहन देते रहे। बेचारा लड़का इतनी भीड़ के बीच अपनी केन्द्र-स्थिति से बौखलाकर निर्जीव होकर गिरने को हुआ। उसकी पहली धारणा हुई कि वह भाग खड़ा हो, तीर की तरह इस भीड़ को पारकर दूर, कहीं बहुत दूर, इस ग्लानि तथा पीड़ा की पहुंच से बाहर पहुंच जाए। किन्तु तुरन्त ही उसने पहचाना कि वह तो एक दीवार के अन्दर बन्द है–स्थूल शारीरिक दीवार नहीं–वैसे तो उसके मजबूत कन्धे की एक टक्कर से कंकाल शेष लाला लोगों की पंक्ति तितर-बितर हो

जाती–वरन् सूक्ष्म सामाजिक बन्धनों की दीवार भी। यदि वह इस भीड़ को चीरकर बाहर निकला, तो न जाने कितने आदमी उसके छूने से अपवित्र हो जाएंगे और फिर जो गोलियों की बौछार उस पर पड़ेगी, वह तो अभी से उसके कानों में गूंजने लगी।

''न मालूम दुनिया का क्या होने जा रहा है। इन सूअरों के दिमाग बहुत आसमान पर चढ़ गए हैं!'' एक छोटा-सा बुड्ढा आदमी बोला। ''अभी उस दिन इसका भाईबन्द, जो हमारी टट्टी कमाता है, कह रहा था कि दो रूपया महीना लूंगा। एक रूपया रोटी जो अब मिल रहा है उससे उसकी तसल्ली नहीं।''

''वह लाट साहब की तरह चल रहा था जैसे कोई लेफ्टीनेंट गवर्नर हो,'' छूत से अपवित्र हुआ प्राणी चिल्लाया। ''सोचो तो भाइयो! कैसा अनर्थ है!''

''हां-हां, मैं जानता हूं,'' दूसरे खूसट ने हां-में-हां मिलायी, ''न जाने, कलजुग क्या-क्या दिखाएगा!''

''जैसे सारी सड़क का यही मालिक हो।'' छुआ हुआ आदमी फिर बोला, ''कुत्ते का पिल्ला!''

गली में खेलते हुए अनेक बदमाश छोकरे लोगों की टांगों में से निकल-निकलकर तमाशा देखने खड़े हो गए थे। उनमें से एक अभियोक्ता से सुर मिलाकर बोला, ''हां बे कुतिया के पिल्ले! अब बोल, कैसे मिज़ाज है। रोज़ तू हमें पीटा करता था।''

''अब देखो! देखो!'' छुआ आदमी उत्तेजना दिखाने लगा, ''यह छोटे-छोटे मासूम बच्चों को भी पीटता है। छंटा हुआ बदमाश है।''

बक्खा के लिए एक-एक पल दुःख तथा ग्लानि के अनन्त युग के समान बीत रहा था। उसकी समूची आकृति विनय-भाव में सम-केन्द्रित हो रही थी, उसके अन्तस्तल में विचित्र उद्गार उठ रहे थे। उसकी टांगें कांप रही थी। उसका शरीर डगमगा कर पतनोन्मुख था। वह वास्तव में खिन्न था अपने उत्पीड़कों के प्रति खेद-प्रकाशन का भरसक प्रयत्न कर रहा था। किन्तु उस भीड़ के तथा उसके बीच में एक गहरी खाई थी जो उसकी भावनाओं को भी उनके हृदय तक नहीं पहुंचने देती थी। एक ओर उसकी मूकता थी, दूसरी ओर उनकी उबलती, उफनती, क्रोध से जलती झिड़कियां–''सूअर लापरवाह हो गए हैं! अपना उत्तरदायित्व नहीं समझते!'', ''काम ही नहीं करना चाहते!'' ''इधर-उधर मचलते फिरते है!'' ''इनका तो ज़मीन से नामोनिशान मिटा देना चाहिए!''

अब तक तो बच्चा चुप खड़ा था। इस बदमाश छोकरे के झूठे आरोप पर उसकी शुद्धात्मा अपने बचाव को तिममिला उठी।

''मैंने तुझे कब पीटा?'' उसने कुपित स्वर में बच्चे से पूछा।

''जरा इसकी ढिठाई तो देखो!'' छुआ हुआ चिल्लाया, ''कटे पर नमक छिड़क रहा है! अब मुकर रहा है! देखो!''

''नहीं लालाजी, यह बिलकुल सच नहीं है कि मैंने इस लड़के को पीटा-यह बिलकुल सच नहीं है।'' बक्खा ने विनती की। ''अब जरूर मेरे से ख़ता हो गई। मैं आवाज लगाना भूल गया। आपसे माफी मांगता हूं। फिर कभी ऐसा नहीं होगा। मैं भूल गया था। अब माफ करो, फिर कभी ऐसी ख़ता नहीं होगी।''

उसके चारों तरफ भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। वे उसे घूर रहे थे, मुंह चिढ़ा रहे थे, आवाज़ें कस रहे थे। उसके पश्चाताप पर किसी को छाया मात्र भी तरस नहीं आया। उसकी क्षमा-प्रार्थना पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वे पूर्ववत् कठोर खड़े रहे। अभियोक्ता की डांट-फटकार, गलियों के नीचे उसे दबता-पिसता देखकर वे क्लेशानन्दी की भांति आह्लाद अनुभव कर रहे थे। जो चुप भी खड़े थे उन्हें भी चीखने-चिल्लाने वालों की गाली-गलौज में अपनी ही उभरती हुई शक्ति-कुवासना की तृप्ति प्राप्त हो रही थी।

बक्खा के लिए एक-एक पल दुख तथा ग्लानि के अनन्त युग के समान बीत रहा था। उसकी समूची आकृति विनय-भाव में सम-केन्द्रित हो रही थी, उसके अन्तस्तल में विचित्र उद्गार उठ रहे थे। उसकी टांगें कांप रही थी। उसका शरीर डगमगा कर पतनोन्मुख था। वह वास्तव में खिन्न था अपने उत्पीड़कों के प्रति खेद-प्रकाशन का भरसक प्रयत्न कर रहा था। किन्तु उस भीड़ के तथा उसके बीच में एक गहरी खाई थी जो उसकी भावनाओं को भी उनके हृदय तक नहीं पहुंचने देती थी। एक ओर उसकी मूकता थी, दूसरी

ओर उनकी उबलती, उफनती, क्रोध से जलती झिड़कियां–''सूअर लापरवाह हो गए हैं! अपना उत्तरदायित्व नहीं समझते!'', ''काम ही नहीं करना चाहते!'' ''इधर-उधर मचलते फिरते है!'' ''इनका तो ज़मीन से नामोनिशान मिटा देना चाहिए!''

बक्खा के सौभाग्य से उसी समय वहां एक तांगे वाला आ निकला–हिलते-डुलते लकड़ी के बक्से को दो बांसों के सहारे खेंचती, लड़खड़ाती जर्जरित, बुड्ढी घोड़ी को तिकतिकाता; तथा भोंपू या घंटी के अभाव में अपने मुंह से ही भीड़ को 'बचो, बचो' की चेतावनी देता। यदि वह यथासमय रास न खींचता तो कोई दुर्घटना ही हो जाती। अपनी-अपनी आयु तथा अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल घृणा तथा विनोदसूचक निरर्थक गालियां, झिड़कियां देते सब लोग इधर-उधर बच गए। छुआ आदमी अब भी संतुष्ट नहीं हुआ था। यह जानते हुए भी कि बढ़ते हुए तांगे के सामने से उसे बचना ही पड़ेगा, वह अपनी जगह पर डटा रहा। एक भीरु भंगी के लड़के के विरोध में अभिभूत स्वेच्छाचारिता ने एक झूठी शक्ति की भावना को उदय कर इस 4 फीट 10 इंच के बौने को देवसम विशाल बना दिया था और बरसों बाद आज ही तो उसे शक्ति-प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हुआ था।

''हटो! ए लालाजी!'' अपने व्यवसाय की स्वरूप-सूचक घृष्टता के साथ तांगे वाला चिल्लाया। छुए प्राणी ने उसकी ओर असहिष्णु, घृणा भरी दृष्टि से देखा और हाथ से रुकने का इशारा किया।

''मेरी तरफ आंख मत निकालना,'' तांगे वाले ने उलटकर जवाब दिया और अपनी राह जाते-जाते अचानक रास खेंचकर खड़ा हो गया।

उसने सुना–लाला बक्खा से कह रहे थे, ''तूने मुझे छू दिया। अब मुझे नहाना पड़ेगा और किसी-न-किसी तरह अपनी शुद्धि करनी पड़ेगी। ले अपनी लापरवाही की सज़ा, सूअर के बच्चे!'' और तड़ाक से एक तीक्ष्ण तमाचा हवा में गूंज गया।

बक्खा का साफा नीचे गिर गया। हाथ के लिफ़ाफे में से जलेबियां धूल में बिखर गई। वह हक्का-बक्का सा खड़ा रह गया। तब उसका संपूर्ण चेहरा आग से जल उठा। अब उसके हाथ जुड़े नहीं रहे। आंसू उसके नेत्रों में छलछलाकर गालों पर बह चले। उसके विशाल शरीर की शक्ति तथा सामर्थ्य आंखों में भरी बदले की भावना के साथ दमक उठे। उसका सारा शरीर ग्लानि, क्रोध तथा घृणा से भर गया। क्षण-भर में उसकी विनय काफ़ूर हो गई। वह आपे से भी बाहर हो जाता, किन्तु इतने ही में चपत मारने वाला गली में खिसककर उसकी पहुंच से बाहर हो गया था।

बक्खा का साफा नीचे गिर गया। हाथ के लिफ़ाफे में से जलेबियां धूल में बिखर गई। वह हक्का-बक्का सा खड़ा रह गया। तब उसका संपूर्ण चेहरा आग से जल उठा। अब उसके हाथ जुड़े नहीं रहे।

''छोड़ उसे परवा न कर, जाने दे, आ, अपना साफ़ा बांध,'' तांगे वाले ने सान्त्वना देते हुए कहा। मुसलमान होने के कारण कट्टर हिन्दुओं के लिए वह भी अस्पृश्य ही था, और इस नाते उस बहिष्कृत का रोष अंशमात्र में स्वयं भी अनुभव करता था।

बक्खा शीघ्रतापूर्वक एक ओर हटा ओर अपने झाड़ू-टोकरी पृथ्वी पर रख, उसने जैसे-तैसे अपने साफ़े के बन्द लपेटे। फिर हाथ से आंसू पोंछ, अपने यन्त्र उठा, चलना प्रारम्भ किया।

''अब कभी आवाज़ लगाना मत भूलना, हराम के बच्चे!'' एक ओर से एक दुकानदार ने कहा, ''आज तो मज़ा मिल गया।'' बक्खा शीघ्रता से आगे बढ़ गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि सब उसे ही घूर रहे हैं। दुकानदार की गाली को उसने चुपचाप सहन किया और अपनी राह ली। थोड़ी दूर निकलकर वह धीमा पड़ा और उसके मुख से आप-ही-आप निकलने लगा–''बचना जी, भंगी आ रहा है!... भंगी आ रहा है!... भंगी आ रहा है!''

किन्तु उसकी आत्मा में रोष की ज्वाला अन्तः प्रसुप्त थी। अधबुझी आग में से अस्थिर, विषम झटकों में उठती धुएं की लपटों की तरह उसकी भावनाएं कभी किसी गली की याद से, कभी किसी फटकार की याद से, उसकी आन्तरिक ग्लानि की भस्म में एक चिनगारी सुलगा देती थीं। मस्तिष्क के इस धूम्रमय वातावरण को चीरती हुई आज की आपबीती के अभिनेताओं की भूतों की-सी आकृतियां उभर आती थीं। इन अनेक अस्पष्ट आकृतियों के केन्द्र में होता छुपा हुआ मनुष्य–उसकी रुचिरक्त आंखें, उसका कृश शरीर और पिचके गाल, उसके सूखे छोटे-छोटे होंठ, उसकी हास्यास्पद उद्विग्न मुद्रा, उसकी गाली-गलौच। और दीखता वह भीड़ का घेरा–खिल्ली उड़ाता, गाली बकता–जिसके बीच में वह हाथ जोड़े खड़ा था। 'यह सब क्यों हुआ?' उसने अपने मन से अपने रोम-रोम की उस मूक भाषा में पूछा, जिसके द्वारा भावनाओं को आदान-प्रदान करके वह प्रायः अपने-आपसे बातचीत किया करता था। 'यह सब बखेड़ा क्यों हुआ? मैं इतना नम्र क्यों बन गया? मैं उसे मार सकता था! और मज़ा तो यह कि मैं आज प्रातः शहर आने को कितना उत्सुक था! मैंने चिल्ला-चिल्लाकर लोगों को अपने आने की सूचना क्यों नहीं दी? अपने काम-से-काम न रखने की यह सज़ा है। मुझे तो सड़क बुहारने में लग जाना

चाहिए था। गली के ऊंची जात वालों को मुझे पहचान लेना चाहिए था। वह आदमी! वह मेरे चांटा मारे! और मेरी जलेबियां ! उन्हें खाकर निबटा ही लेता। किन्तु मैं कुछ कह क्यों नही सका? क्यों न मैं उसके आगे हाथ जोड़कर अपना रास्ता पकड़ता! मेरे गाल का तमाचा! कायर! कैसे वह कुत्ते की तरह दुम दबाकर भाग गया। और वह लड़का! झूठा कहीं का! फिर तो मिले किसी दिन। वह जानता था कि मुझ पर गालियां पड़ रही थीं। उनमें से एक भी तो मेरी तरफ से नहीं बोला। अत्याचारी भीड़! सब-के-सब दे गाली, दे गाली! हम पर सदा गाली ही क्यों पड़ती है? उस दिन सेनेटरी इंस्पेटकर और साहब ने मेरे बाप को गालियां दी। वे सदा हमें कोसते हैं। क्या इसलिए कि हम भंगी है? मल छूते है! उन्हें मल से घृणा है। मुझे भी तो इससे घृणा है! तभी तो मैं आज शहर आया। रोज़-रोज़ टट्टियों पर काम करते मैं ऊब गया था। तभी तो ये हमें नहीं छूते-ये ऊंचा जात वाले। तांगे वाला दयालु था। 'अपनी चीज़ें उठाकर रास्ता पकड़!' उस ढंग से कहकर तो उसने मुझे रुला ही दिया। पर वह मुसलमान है, मुसलमान और साहब लोग तो हमें छू लेते है। हिन्दू सवर्ण तथा भंगियों के अतिरिक्त अन्य बहिष्कृत भी हमें नहीं छूते! उनके लिए मैं भंगी हूं-भंगी, अछूत! अछूत! यह है वह शब्द! अछूत! मैं अछूत हूं।'

उसकी स्थिति की वास्तविकता, उसके भाग्य की मन्दता आज अन्धकार में एक उज्ज्वल रश्मि की भांति चमक पड़ी। उसने उसके मस्तिष्क के भीतरी कोनों को जगमगा दिया। उसके जीवन में जो-कुछ भी घटा था सब इस ज्योति-पुञ्ज से टकराकर स्पष्ट हो गया। प्रात:काल टट्टी आने वालों की घृणाभरी शिकायत कि टट्टियां साफ नहीं है, बहिष्कृतों की बस्ती के लोगों की झिड़कियां, आज सुबह उसे घेरकर खड़ी हुई भीड़ की गालियां-सब अब स्पष्ट हो गया। यही है नाम उस दारुण आघात का जो उसकी पहले से सोई पड़ी इन्द्रियों में बिजली-सा कौंध गया, जिसने उसके अस्तित्व में एक कंपकंपी पैदा कर दी तथा उसकी देखने, सुनने, सूंघने, छूने, चखने की नस-नस को स्फुरित कर दिया। 'मैं एक अछूत हूं!' उसने अपने मन में दोहराया, 'एक अछूत! वह अपने मन में इस शब्द को दोहराता ही रहा, क्योंकि उसके मस्तिष्क में अभी एक धुन्ध शेष था और उसे डर था कि कहीं फिर अन्धकार न छा जाए। तब अपनी स्थिति से परिचित, उसने अभ्यस्त वाक्य चिल्लाना शुरू किया-'बचना जी, भंगी आ रहा है!'' 'अछूत', 'अछूत' का मन्द स्वर उसके हृदय में गूंज रहा था और 'बचना, भंगी आ रहा है!' की चेतावनी उसके मुंह पर। उसकी चाल तेज़ हो चली और उसके बूट सदा की तरह फौजी चाल चलने लगे। उसे ध्यान आया कि पृथ्वी पर धम-धम पड़ते उसके जूते लोगों का ध्यान बहुत आकर्षित कर रहे हैं तो उसने अपनी गति कुछ धीमी कर दी।

तब अपनी स्थिति से परिचित, उसने अभ्यस्त वाक्य चिल्लाना शुरू किया-'बचना जी, भंगी आ रहा है!'' 'अछूत', 'अछूत' का मन्द स्वर उसके हृदय में गूंज रहा था और 'बचना, भंगी आ रहा है!'

सब तरह से लोग उसे घूर रहे थे। उसने भी अपनी तरफ घूरकर देखा कि क्यों वह इतना ध्यान आकर्षित कर रहा है। उसके साफ़े के बन्द माथे पर ढीले हो लटक रहे थे। वह एक कोने में रुककर उसे ठीक तरह बांधना चाहता था। सड़क के बीच में तो वह रुक नहीं सकता था। वह एक कोने में गया-इस डर से कि कहीं उसे कोई देख न रहा हो, उसने उदासीनता का भाव धारण कर लिया, मानों उसके हाथ में कोई अत्यन्त आवश्यक काम हो जिसका विचार उसे त्रस्त कर रहा था। फिर उसने चारों तरफ घूरा। इस अभिनय के कारण उसके मन ने उसे ही मूर्ख ठहराया। उसने अपना साफा खोला और खूब कस-कसकर उसे अपने सिर पर लपेटने लगा।

जहां वह रुका था, वहां बड़ी चहल-पहल का सुन्दर दृश्य था। उसके अन्दर की जलन ने उसके मस्तिष्क को खोखला कर दिया था। वह स्थिर खड़ा था। उसकी हृत्तन्त्री के तारों पर जिस-जिस भावना का आघात हो रहा था, वह प्रत्येक को प्रस्फुट करने का विफल प्रयत्न कर रहा था। समीप ही एक ऊंचे-से कोहान, छोटे-छोटे सींग वाला विशालकाय चित्तीदार सांड आधे नेत्र खोले जुगाली कर रहा था। प्रात: से ही बक्खा की घ्राणेन्द्रिय पर अनेक गंधों ने आक्रमण किया था, किन्तु इस सांड़ की डकार से निकली दुर्गन्ध इन सबसे विचित्र तथा अधिक जी मचलाने वाली थी। तभी उसे इसका पतला गोबर भी साफ करना पड़ा, जिससे उसका जी और मचलाया। परन्तु उसी समय साफ-सुथरे कपड़े पहने एक सम्पन्न वृद्ध हिन्दू सज्जन, जिनके बाएं कन्धे पर रईसी ठाट का रेशमी दुपट्टा पड़ा था, आगे बढ़कर भक्तिपूर्वक उस दिवानिद्रा में मग्न सांड़ को अपनी उंगलियों से छुआ। बक्खा नहीं समझ सका कि हिन्दू लोग ऐसा क्यों करते हैं। तभी उसकी स्मृति की उड़ान में एक दृश्य आया जो शहर में उसने प्राय: देखा था। इधर-उधर निष्प्रयोजन घूमता हुआ सांड़ धीमे-धीमे एक साग-सब्जी वाले की दुकान पर पहुंचता है और टोकरों की पंक्ति पर मुंह मारकर बन्दा, पालक या गाजरों से मुंह भरकर

अलग हट जाता है। दुकानदार उसे आहिस्ता से धमकाता है, हाथ से डपटता है, पर मारता नहीं। सांड़ अपने उड़ाए हुए शाक-पात को चर्बण करता हुआ एक-दो गज हट जाता है; फिर ज्योंही दुकानदार का मुंह फिरता है, दुकान पर दुबारा आक्रमण करता है। 'आश्चर्य है कि हिन्दू गाय को 'माता' तो कहते हैं, पर उसे खाना नहीं देते!' बक्खा ने सोचा। 'नदी के किनारे उनके जो जानवर चरने आते हैं, कितने क्षीणकाय तथा दुर्बल हैं! उनकी गाएं दो सेर प्रतिदिन से अधिक दूध नहीं दे सती।' उसने आत्म-श्लाघा के साथ याद किया—'उसके पिता के पास भी एक भैंस थी, जो उसे एक अमीर हिन्दू व्यापारी से मिली थी; दान में नहीं, वरन् एक अन्ध विश्वास के फलस्वरूप। व्यापारी को पुत्र की अभिलाषा थी और ब्राह्मणों ने उसे आदेश दिया था कि भंगियों को जानवर दान करो। उस भैंस को वे रोज दाना खिलाते थे तथा ऐसी टहल करते थे कि वह प्रतिदिन बारह सेर दूध देती थी। और ये लोग अपनी गायों को केवल झूट-कूट ही खिलाते हैं, दाना भी वह जो गोबर में से छटवाते हैं—उसे ही तो छांटना पड़ता है। 'पर हैं ये गायों पर दयालु! यह सांड़ रोज़ाना प्याज़ में मुंह मारता होगा, तभी तो ऐसी गंध आती है।

अब तक तो वह अपने को अपने वातावरण से भिन्न रखने में सफल हुआ था। पर अब एक गाड़ी गाजर और शलजम से भरी हुई आयी और पृथ्वी पर उंडेल दी गई। वह शीघ्रता से दो-चार पग हट गया। पर यहां ढेर-का-ढेर सड़ी या सड़ती हुई सब्जियां टोकरों पर बिखरी पड़ी थी। वह सड़ांद की दुर्गन्ध से दूर भागे बिना न रह सका। थोड़ी देर तक वह बिना पलक हिलाये शून्य दृष्टि से ताकता हुआ चलता रहा। संतप्त, संकुल बाजार प्रकाश में दमक रहा था। उसे पसीना आ गया। उसका चौड़ा निष्कपट चेहरा जो साधारणतया इतना भावपूर्ण, इतना परिवर्तनशील, रहता था; उसकी चमकती उभरी गाल की हड्डियां, चौड़ी नाक, अरबी घोड़े की भांति फूलते हुए नथुने, सुन्दर, भरा हुआ, कम्पनशील अधर, जो सदा सजीव दीखता था, आज फूला हुआ गम्भीर, मूक, कठोर तथा निर्जीव था।

'बचो जी, भंगी आ रहा है', फुसफुसाता हुआ वह आगे बढ़ा। सामने न तो विस्तृत, व्यस्त बाजार था, न छोटी तंग गली, वरन् दोनों का सम्मिश्रण था। यहां कुछ बेढ़ंगी दुकानें अंग्रेजी बाजे वालों की थी, जो किसी फौजी पैंशनर बैंड मास्टर की अध्यक्षता में विलायती वाद्य-यंत्रों को बजाते हैं और संकुल नगरों की गलियों में विवाह अथवा सन्तानोत्पत्ति-समारोहों पर बड़े चाव से बुलाए जाते हैं। इस गली का नाम 'चतुर्मुखी गली' था और इसमें स्थान-स्थान पर बिसांतियों तथा पनवाड़ियों की दुकानें थीं। एक आधुनिक आटा पीसने की चक्की थी, जहां लोग साबुत गेहूं खरीदकर पिसवाते थे, पैसे की बचत के उद्देश्य से अथवा दुकानों पर बिकते आटे-मैदे के कुपच होने के कारण। एक ओर पुराना कोल्हू था—एक बड़ी अंधेरी दुकान के बीचोंबीच काठ की ओखली में छत से अटके काठ के मूसल को घुमाता हुआ बैल गोल चक्कर काट रहा था। बचपन से ही यह सड़क बक्खा को याद थी। इसके गहरे गड्ढों से वह परिचित था और इसका बैरकों-जैसा लम्बा सीधा आकार उसे पसन्द था। अंग्रेजी वाद्य यंत्र और बाजे की दुकानों पर लटकती सुनहरी किनारीदार वर्दियां, विशेषकर नगर-प्रसिद्ध बैण्डमास्टर जहांगीर की दुकान थी, उसके अंग्रेजों की नकल में मग्न मस्तिष्क को बहुत सुख देती थी। इस गली की अपेक्षाकृत शान्ति ने उसकी उत्तेजना को कम कर दिया। यहां की विरल दुकानों ने उसका ध्यान विशेष आकृष्ट नहीं किया। इस वातावरण में उसकी घबराहट कुछ कम हुई। पीतल के बाजे और वर्दियां उसके ध्यान को खींचकर अड़तीस डोगरा पलटन के उस फौजी बैण्ड की ओर से गई जिसे वह प्रायः प्रतिदिन ही छावनी में बजता सुनता था। वह अपने अपमान तथा आपत्ति को अंशतः भूल गया, उसे कुछ सान्त्वना मिली, उसका क्लेश दूर हो गया।

इस शांत गली से निकल वह एक ऐसे मकान के सामने से कोना मुड़ा जो सड़क के ऊपर पुल बांधकर छत्ता बनाता था। अब उसे एक ऐसी दुकानों की पंक्ति मिली जहां गिलट के गहनों पर बिजली से मुलम्मा चढ़ाया जा रहा था। बचपन में बक्खा ने प्रायः उंगलियों में अंगूठियां पहनने की इच्छा प्रकट की थी। उसे अपनी माता का चांदी के आभूषणों से सुसजित शरीर बहुत सुहाना लगता था। पर अब वह गोरा-बारको में रह चुका था और जानता था कि साहब लोग गहने पसन्द नहीं करते। उसे भड़कीले जड़ाऊ देसी गहनों से घृणा हो गई थी। सुनारों द्वारा कौशलपूर्वक हरे काग़जों में सजाई बड़ी-बड़ी बालियां, नथ, चक तथा अन्य सोने का मुलम्मा-चढ़े आभूषणों की ओर बिना देखे ही वह आगे बढ़ता रहा। एक कपड़े के टुकड़ों का व्यापारी सड़क के बीचोंबीच अपना तिपहिया ठेला खड़ा किए कुछ श्वेत चादरों से सुसज्जित हिन्दू महिलाओं से मूल्य के ऊपर झगड़ रहा था। क्षणभर को बक्खा ठिठका कि वे उसे निकलने को रास्ता देती है या नहीं। वह इतना थक गया था कि चिल्ला नहीं सका, वरन् एक सिक्ख मिस्त्री द्वारा बहुमूल्य दीखने वाले चौखटों में जड़े जाते हिन्दू देवताओं के जर्मन चित्रों को देखता खड़ा रहा। हाथ में फूल लिए तिरछी लेटी एक नग्नप्राय मेम के चित्र ने उसका ध्यान देवी-देवताओं के चित्रों से हटा लिया। बक्खा के हाथ की झाड़ू-टोकरी देखकर दुकानदार ने उसे घृणामय नेत्रों से घूरा और अपनी राह पकड़ने का आदेश दिया। भंगी के लड़के ने अपना मुंह उठाया और कटपीस के व्यापारी के ग्राहकों को 'बचना जी, भंगी आ रहा है।' की आवाज लगाता वह आगे बढ़ा। कपड़ों की खींचातानी में, मूल्य-निर्णय के शोर में, वह क्रोधी

मुसलमान व्यापारी कठिनता से ही अपने माल को ग्राहकों के हाथों से खींच सका और 'अछूत' के आने की सूचना उन्हें दे सका। अन्त में सूचना मिलने पर भीड़ उखड़ी और बक्खा के आगे-आगे इठलाती, मचलती, कोई प्रसन्न, कोई उदास, कोई कुपित, कुछ कानाफूसी में, तो कुछ तुमूल-रव वार्तालाप में निमग्न, आगे बढ़ी और चूड़ी वालों को जा घेरा, जो अपने शीशे के माल हिला-हिला कर भीड़ की नवोढ़ा वधुओं को आकृष्ट कर रहे थे। ये भीरु ललनाएं ज़री की किनारी-लगी रेशमी चादरें ओढ़े, बनारसी साड़ियों में लिपटी, अपनी सास या माताओं के पीछे-पीछे चकित गति से उसी मंदिर को जा रही थीं जहां बक्खा जा रहा था। कुछ थकान के साथ उसने फिर पुकारा-''बचो जी, भंगी आ रहा है।' किन्तु उत्सुक आवेशमयी महिलाएं भूल चुकी थीं कि वे पहले स्थान से आगे क्यों खिसकी थीं। संगीत-नाटक की गायिकाओं के से उनके स्पन्दनशील वक्ष:स्थल से तो तुमुल-रव वार्तालाप का स्रोत बह चला था। बक्खा को कई बार चिल्लाकर उनका ध्यान आकृष्ट करना पड़ा।

अन्त में उसे रास्ता मिला और मंदिर दृष्टिगोचर हुआ-स्थूल प्रस्तर-निर्मित, चित्रकारी-विभूषित उत्तुङ्ग स्तूप-सुशोभित विशाल भवन, जिसकी महीन चित्तकारी ने उसकी सम्पूर्ण भावना को विचित्र रूप से आक्रान्त कर दिया। बारह सिर तथा दस हाथ वाले देवी-देवताओं के प्रति आदर भाव बचपन से ही बक्खा के मन में भरा गया था, उससे उत्पन्न हुई भय की भावना को वह कभी दूर नहीं कर सका। अब जिस दालान में वह चल रहा था उसमें पड़ती ऊंची दीवार की छाया से ऊपर झांकते ही एक अज्ञात शक्ति ने उसे आ दबाया जो वहां प्रच्छन्न प्रतीत होती थी और जिसने वहां के वायुमंडल को इतना भारी बना रक्खा था कि सांस लेना कठिन था। कुछ सलेटी रंग के कबूतर उड़कर आए और दीवारों पर बनी मूर्तियों के बीच छूटे रिक्त स्थानों पर बैठकर आराम करने लगे। उनके हल्के नीले रंग में कुछ ऐसी ठंडक थी कि उन्हें देखकर तथा उनकी गुटर-गूं सुनकर उसे बड़ी शान्ति मिली। अब उसने अपने संमार्जक स्वभाव की दृढ़ता के साथ उस दालान का पर्यवेक्षण किया, देखा उन बींट, फूल और पत्तों के ढेरों को तथा उस गर्द को जिन्हें साफ़ करने वह यहां आया था।

मंदिर के दालान में फैले वटवृक्ष के घने पत्तों की छाया में खड़े हो उसने टोकरी-झाडू को पृथ्वी पर रखा और अपनी धोती को कसा। बरगद के विशाल तने के चारों ओर बनी एक पत्थर की मठिया में एक मन्दिराकार पीतल के पिंजरे में सर्प की एक चमकती मूर्ति विराजमान थी। उस पर उसकी दृष्टि रुकी और उसने यों ही अपने मन में सोचा, 'यह सर्पमूर्ति कैसी! इसका तात्पर्य क्या है!' उसके सरल मस्तिष्क ने उत्तर दिया, 'पेड़ की जड़ में कोई सांप रहता होगा।' वह डरा और आप की आप एक-दो कदम पीछे हट गया। पर जब उसने देखा कि लोगों की एक लंबी पंक्ति बड़ के नीचे की छोटी मठिया की वेदी के चरण छूकर दालान को चली जा रही है तो उसकी घबराहट दूर हुई। वह अपनी झाड़ू-टोकरी उठाने को उस स्थान की तरफ बढ़ा। आज सुबह की दुर्घटना को बचाने के लिए वह बराबर 'बचो जी' की आवाज लगाता गया। यहां की भीड़ बहुत अधिक कट्टर थी, यह भीड़ जो बड़ी चौड़ी सीढ़ियों पर चढ़-उतर रही थी, विशाल द्वार के बाहर भीतर; यह संकुल भीड़ जो अपने नीले, सफेद, लाल, हरे, सूती, रेशमी वस्त्रों में कन्धे-से-कन्धा छील रही थी। बक्खा ने अपनी भीतरी आंख से भीड़ के परे बूरा। एक पहेली को सुलझाने को उत्सुक साधारण जिज्ञासु जन की भांति द्वार के भीतर चर्मचक्षु फेंकना तो उसके साहस के बाहर था। वह तो ऐसे घूर रहा था जैसे कोई गुलाम अपने स्वामी के भीतरी रहस्य में चोरी-छिपे पूछताछ कर रहा हो। उसने अपने मन से पूछा, 'ये लोग यहां क्या पूजने आते हैं?'

''राम राम श्री श्री हरि नारायण श्रीकृष्ण'' गाता हुआ एक भक्त उससे लगभग अड़ता हुआ निकल गया। 'हे हनुमान जोध, काली माई।''

बक्खा को उत्तर मिल गया। 'राम' शब्द उसने पहले भी कई बार सुना था, 'श्री श्री' भी। और उसने एक लाल मन्दिर देखा था, जिसकी एक दीवार पर बन्दर का चित्र था और बाहर पीतल का जंगला। वह जानता था कि उसे हनुमान का मन्दिर कहते हैं। और काले मन्दिर में घोर काली स्त्री-प्रतिमा, अग्नि-रक्त टपकाती जीभ, दस हाथ, गले में मुण्डमाला-वही तो कालीबाड़ी कहलाता था। कृष्ण, गली में पनवाड़ी की दुकान में टंगे रंगीन चित्रों में बांसुरी बजाने वाला नीलवर्ण देवता था। पर 'हरि' कौन था? 'नारायण' कौन था? इतने में ही एक दूसरा आदमी 'ओम् ओम् शान्ति देव'' कहता हुआ निकल गया। यह सुनकर तो वह बिल्कुल ही गड़बड़ा गया। 'यह शन्ति देव कौन है? क्या वह भी मन्दिर में है?'

'यहां खड़े-खड़े तो कुछ नहीं दीखेगा, उसने सोचा, 'कुछ आगे बढ़कर देखूं।' पर बढ़ने का साहस नहीं हुआ। उसका बल क्षीण हो गया। वह समझ गया कि एक अस्पृश्य मन्दिर में घुसा तो वह सदा को अपवित्र हो जाएगा, फिर तो उसकी शुद्धि भी नहीं हो सकती। उसके पिता को कहीं पता चल गया कि उसने सुबह कुछ भी काम नहीं किया तो वह कितना कुपित होगा। इस तरह घूमता देखकर कोई उसे चोर ही न समझ ले।

किन्तु वहां खड़े-खड़े उसकी जिज्ञासा की धार अधिकाधिक तीक्ष्ण ही होती गई। अचानक उसने सोच-विचार छोड़ दिया और दृढ़ता के साथ तेजी से सीढ़ियों की ओर कदम बढ़ाया। वह कभी इधर ताकता था, कभी उधर। सिर में उसके भारी तनाव

था, पर डर बिल्कुल नहीं। हत्या-कला में अपने पूर्ण नैपुण्य पर विश्वास रखने वाला कोई हत्यारा ही शायद उस भांति बढ़ सकता। पर शीघ्र ही उसने अपनी चारुता खो दी। बरसों के स्वाभाविक अवनमन के मृत्युवत् बोझ ने उसकी कमर तोड़ दी। वह वही दीन शोषित जीव बन गया जैसा जन्म से था, सब चीजों से भयाकुल, एक विचित्र संशक क्षुद्र गति से धीरे-धीरे रेंगता हुआ। दो सीढ़ी चढ़ने के पश्चात् वह अपनी विह्वलता में जड़वत् खड़ा रह गया, और फिर वहीं लौट आया जहां से चला था। छोटी लकड़ी की मुठिया वाली अपनी झाड़ू उठा वह दालान बुहारने लगा। उसके सामने उड़ता हुआ धूलिकणों का नन्हा-सा बादल कहीं हल्का नीला-सफेद था और कहीं सूर्य-किरणों के सम्पर्क में आने से चमकीली सुनहरी रश्मियां प्रसृत कर रहा था। इस ओर बक्खा का तनिक भी ध्यान नहीं गया। उसके लिए तो अधिक आवश्यक था बरगद के पत्ते, फूल की पंखुड़ियां, कबूतरों की बींट, लकड़ी के टुकड़े तथा धूल का ढेर जो उसकी झाड़ में शीघ्र ही बटोरकर एकत्रित कर दिया। इस पर भी उसका विशेष ध्यान नहीं गया जब तक कि धूल उसके नथनों में नहीं घुसने लगी और तब उसने अपने साफे का छोर नाक पर बांध लिया। वह खिसकता गया, धीमे-धीमे, क़दम-क़दम, उसी अपनी सदा की उदासीनता के साथ। टट्टियों पर काम करने की अपेक्षा यह कार्य मन्द था और थकाने वाला, परन्तु उतना अप्रिय नहीं।

उसने कूड़े की छोटी-छोटी ढेरियां बनायीं क्योंकि वह जानता था कि दालान-भर का सारा कूड़ा छोटी-सी झाड़ू से एक ही जगह समेट लेना उसकी सामर्थ्य से बाहर था। फिर इन छोटी-छोटी ढेरियों को एक-एक कर अपनी टोकरी में वह बटोर लेना चाहता था। जब सब ढेरियां लग गई तो वह माथे पर से पसीना पोंछने के लिए क्षण-भर को रूका। मन्दिर लल-कारता हुआ उसके सामने खड़ा था। वह झुक गया और अपनी झाड़ू से बटोरी ढेरियों को इक्ट्ठा करने लगा। आन्तरिक चेतना की दिशासूचक एक अचूक सूझ उसे फिर मन्दिर की सीढ़ियों के समीप खींच ले गई। पर अब वह डरा हुआ था। प्रतीत होता था कि मन्दिर एक देव की भांति उसकी ओर बढ़ा आ रहा है और उसे हड़प जाएगा। वह क्षण-भर को रूका। फिर उसने साहस बटोरा। एक अचानक आक्रमण के साथ उसने मन्दिर के द्वार तक पन्द्रह सीढ़ियों में से पांच पर अधिकार कर लिया। वहां वह रूका, उसका हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। दौड़ प्रारम्भ करने की रेखा पर खड़े खिलाड़ी की तरह वह तना हुआ था, सिर पीछे खिंचा हुआ। एक दूसरी आंतरिक चेतना की शक्ति उसे एक-दो सीढ़ी और चढ़ा ले गई। यहां घुटने में आकस्मिक आघात से उसका संतुलन खो गया और वह लड़खड़ाता हुआ गिरते-गिरते बचा। उसने सीढ़ी को कसकर पकड़ लिया और संतुलन पुन: प्राप्त कर ऊपर की सीढ़ी तक अंधाधुन्ध लपका। वहां लेटकर उसने संगमरमर की देहली के ऊपर को उचककर झांका। उसके भाग्य से भक्त लोगों के सिर रगड़ने से देहली में गड्ढा पड़ गया था, इस कारण उसे उस पवित्र स्थल की एक झांकी-मात्र मिल गई जो अब तक उसके लिए एक भेद था, एक गूढ़ रहस्य। इस ऊंचे अंधेरे भवन के सबसे अन्दर के भाग में, पीतल के फाटक से परे, संकुचित पथों की एक भूलभुलैया को पार करके, एक ऊंची बेदी की गहराइयों को बक्खा की आंखों ने कुरेदा। वहां जरी की किनारी वाले रेशमी तथा मखमली वस्त्रों की पृष्ठभूमि पर पीतल की विविध मूर्तियां विराजमान थी; उनके चरणों में रखे धूपदान से उठते सुगन्धित धूम्र के मृदु स्फुरण उन्हें धुंधले रूप से आच्छादित किये हुए थे। पास ही बैठे अर्धनग्न पुजारीजी के घोटमघाट सिर पर केशगुच्छ एक दुबौध ग्रन्थि में बंध विशेष प्राधन्य प्राप्त किये था। उनके सामने ग्रन्थाधर पर एक खुला ग्रन्थ रखा था और पीतल के बर्तन, छोटे-बड़े शंख तथा कर्मकाण्ड के अन्य विविध उपकरण फैले पड़े थे। एक लम्बे पुरूष, जो पुजारी ही प्रतीत होते थे, केवल धोती धारण किये, काले बाल, कोमल शरीर, यज्ञोपवीत जिनके चारू अंगों की लावण्यमयी रेखाओं को सुस्पष्ट कर रहा था, उठे और शंखध्वनि की। बक्खा ने देखा, ताका, खूब घूरा और समझा कि प्रात:कालीन पूजा आरम्भ हो गई है। उच्च स्वर में शान्ति-पाठ समाप्त होने पर शंखध्वनि के साथ-साथ, बाएं हाथ से घण्टी बजाते हुए, बैठे हुए पुजारीजी ने अपना कठोर स्वर ऊंचा किया। थोड़ी देर पहले का छोटा-सा शान्त मन्दिर सजीव और भावनामय हो उठा। अन्दर के संकुचित पथों से भक्तगण आ-आकर देवताओं की वेदी के सामने एकत्रित होने लगे, और गुम्बद के नीचे खड़े हो स्वर मिलाकर आरती गाने लगे। प्रथम शंख-ध्वनि के कठिन शब्द के पश्चात् एक मृदु झूमती हुई लय मन्द और स्पष्ट, तथापि एक असाधारण प्रभाव उत्पन्न करने वाली शक्ति से सम्पन्न, एक रोमांचोत्पादक सामर्थ्य से पूरित,

उसने कूड़े की छोटी-छोटी ढेरियां बनायीं क्योंकि वह जानता था कि दालान-भर का सारा कूड़ा छोटी-सी झाड़ू से एक ही जगह समेट लेना उस की सामर्थ्य से बाहर था। फिर इन छोटी-छोटी ढेरियों को एक-एक कर अपनी टोकरी में वह बटोर लेना चाहता था।

विजयपूर्ण पूजा के अन्तिम उच्च जयकार 'श्री रामचन्द्र की जय' में समाप्त हुई।

बक्खा का अन्तस्थल सिहर उठा। गीत की लय ने उसे प्रभावित किया। उसका रक्त लय के साथ झूमता हुआ अन्तिम सशक्त स्वर तक इतने आवेश से पूरित हो गया कि अनजाने ही उसके हाथ जुड़ गए, और अज्ञात भगवान की वन्दना में उसका सिर झुक गया।

"राम! राम! भ्रष्ट कर दिया! भ्रष्ट कर दिया!" की चीख ने उसका ध्यान भंग किया। चीख का स्वर हवा में गूंज उठा। वह घबरा गया। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। उसकी जिह्वा और कंठ सूख गए। वह चीखना चाहता था, एक भयाकुल चीख, पर वह शब्द नहीं निकाल सका। उसने बोलने के लिए मुंह फैलाया, पर व्यर्थ। उसके माथे पर पसीने आ गए। अपने बेढंगे प्रणिपात से उसने उठना चाहा, किन्तु उसके अंगों में शक्ति ही नहीं रह गई थी। क्षण-भर को वह निर्जीव-सा पड़ा रहा।

फिर जितनी आकस्मिकता से वह पराभूत हुआ था, उतनी ही आकस्मिकता से उसमें आत्म-विश्वास प्रकट हुआ। उसने अपना सिर उठाया और चारों ओर देखा। उसकी आंख पर से परदा हट गया। उसे दिखाई पड़ा झुकी हुई मूछों वाला एक नाटा आदमी, मन्दिर के पुजारियों में से ही एक, दालान में भागा आता हुआ, कांपता, लड़खड़ाता, गिरता-पड़ता, हवा में भुजाएं उछालता, कठोर कण्ठ से चीखता-"भ्रष्ट कर दिया! भ्रष्ट कर दिया! भ्रष्ट कर दिया!

'अरे! मैं देख लिया गया! अनर्थ हो गया!' यह विचार बक्खा के मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध गया। तभी उसे चीखते हुए पुजारी के पीछे एक स्त्री की प्रतिमूर्ति दिखाई पड़ी। वह भौचक्का-सा खड़ा रहा, यद्यपि अभी तक वह भयाकुल था और सोचता था कि उसी दुर्दशा होने वाली है। पर उसे यह नहीं ज्ञात था कि दुर्दशा क्या आकार धारण करेगी।

उसे शीघ्र ही पता चल गया। भक्त लोगों की एक विशाल भीड़ मंदिर से बाहर झपटी और एक गायन-नाटक के पटाक्षेप से पूर्व के-से क्रम में पंक्तिबद्ध होकर खड़ी हो गई। नाटा क्षीण पुजारी उससे कुछ सीढ़ियां नीचे हाथ ऊपर उठाए खड़ा था। पुजारी के पीछे आने वाली स्त्री-प्रतिमूर्ति, जो उसकी बहन सोहिनी थी, शरमाती हुई दालान में अटक गई थी।

"भ्रष्ट कर दिया! भ्रष्ट कर दिया! भ्रष्ट कर दिया!" नीचे से ब्राह्मण चिल्लाया।

"राम! राम! भ्रष्ट कर दिया! भ्रष्ट कर दिया!" की चीख ने उसका ध्यान भंग किया। चीख का स्वर हवा में गूंज उठा। वह घबरा गया। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। उसकी जिह्वा और कंठ सूख गए।

ऊपर की भीड़ ने भी उसके स्वर-में स्वर मिलाकर चीखना प्रारंभ किया। कोई भय से, कोई क्रोध से, पर सब-के-सब आवेश के वीभत्स आवेग से, अपने हाथ हिला रहे थे। भीड़ में से एक ने आगे बढ़कर कहा-"उतर सीढ़ी पर से! ओ भंगी। दूर हो यहां से तूने हमारी सारी पूजा भ्रष्ट कर दी! सारा मन्दिर ही अपवित्र कर दिया! अब हमें मन्दिर शुद्धि का व्यय उठाना पड़ेगा। उतर यहां से, भाग दूर, कुत्ते!

बक्खा सीढ़ियों पर से झपटता हुआ, पुजारी के पास से निकलकर अपनी बहन की ओर गया। वह दो भयों की भावना से अभिभूत था-एक भय अपने लिए, उस पाप के लिए जो उसे ज्ञात, उससे हो गया था; दूसरा भय अपनी बहन के लिए उस पाप के लिए जो उससे हो गया हो, क्योंकि वह वहां पर मूक, स्तम्भित खड़ी थी।

बक्खा ने सुना, नाटा पुजारी चीख रहा था, "तुम लोग तो दूरी से ही अपवित्र किये गए हो। मैं तो भिड़कर अपवित्र हुआ हूं।"

'दूरी! दूरी!' भीड़ ने प्रत्युत्तर में चिल्लाकर कहा, "शास्त्रों के अनुसार तो अस्पृश्य उनहत्तर गज की दूरी से ही मन्दिर को अपवित्र कर सकता है, और यहां तो वह सीढ़ियों पर चढ आया था, द्वार के पास तक! हम तो बरबाद हो गए! अब हमें अपने आपको तथा अपने मन्दिर को पुनीत करने के लिए यज्ञ करना होगा।"

"पर मैं.........मैं..............." क्षीणकाय पुजारी ने प्रलाप किया, पर वह अपना वाक्य पूरा नहीं कर सका।

मन्दिर की सीढ़ियों पर की भीड़ ने मान लिया कि सबसे अधिक कष्ट उसे ही पहुंचा है। भीड़ ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट की, क्योंकि उन्होंने भंगी के लड़के को उसके पास से होकर भागते देखा था। उन्होंने उससे नहीं पूछा कि वह अपवित्र किस प्रकार हुआ था। उन्हें उस कहानी का पता नहीं चला जो सोहिनी ने दालान के द्वार पर सुबकियों तथा आंसुओं के साथ बक्खा को सुनायी।

"इस कलमुंहे ने," वह बोली "मेरे साथ अश्लील व्यवहार किया, जब मैं उसके घर टट्टी साफ कर रही थी। और जब मैंने आर्तनाद किया तो यह स्वयं चिल्लाता हुआ भाग खड़ा हुआ कि मुझे अपवित्र कर दिया, मुझे अपवित्र कर दिया।" ■

(इंडिया बुक सेन्टर, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'अछूत' से साभार)

(शेष अगले अंक में)

जीवन चरित्र – तीसरी किस्त

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर – जीवन चरित

■धनंजय कीर

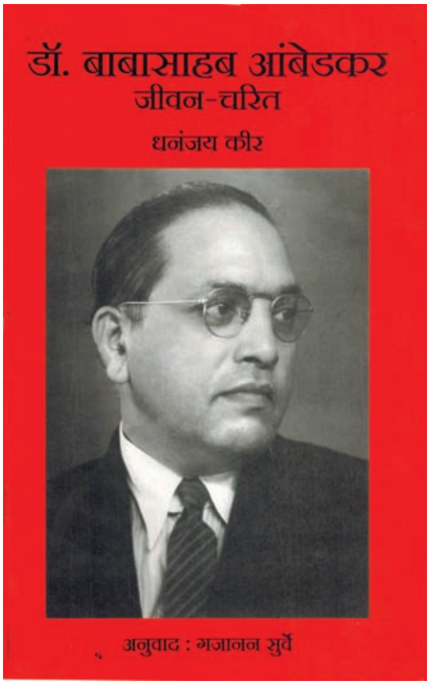

सितम्बर महीने के दूसरे सप्ताह में अम्बेडकर अपने अग्रज बंधु के साथ बड़ौदा गए। स्थानक पर अम्बेडकर से मिलकर उनकी पूरी व्यवस्था की जाने की अनुज्ञा श्री सयाजीराव गायकवाड़ ने की थी। लेकिन अस्पृश्य के स्वागत के लिए कौन जाता? इसलिए अपने निवास और भोजन की व्यवस्था अम्बेडकर को खुद ही करनी पड़ी। यह ठोस खबर बड़ौदा शहर में पहले ही फैल गयी थी कि एक महार युवक बड़ौदा के सचिवालय में नौकरी करने वाला है। किसी भी हिन्दू रेस्तरां में या धर्मशाला में अम्बेडकर को सहारा नहीं मिल रहा था। आखिर उनको एक पारसी धर्मशाला में जगह मिली। वहां अपना नाम बदलकर वे छुपकर रहने लगे। महाराज के मन में अम्बेडकर को वित्तमंत्री बनाने की इच्छा दी, परन्तु उन्हें विभिन्न विभागों में काम करने का अनुभव न होने से महाराज के सेना सचिव पद पर उनकी नियुक्ति हुई।

अम्बेडकर के जन्म से अस्पृश्य होने के कारण सचिवालय में उनके अधिकारियों ने और उनके अधीनस्थ सेवकों ने उन्हें वहां शांति से काम नहीं करने दिया। नौकर वर्ग में से कोई भी उन्हें सहयोग नहीं देता था। वे कागज और संचिकाएं अम्बेडकर के पास दूर से ही पटक देते थे। अम्बेडकर के बाहर निकलते समय वे चटाई तक लपेट देते थे। उन्हें कार्यालय में लिपिकों को रखा पीने का पानी तक नहीं मिलता था। इस अमानुषी और असह्य परिस्थिति के कारण अम्बेडकर सार्वजनिक ग्रंथालय में जाकर पढ़ाई करते थे। उनके वरिष्ठ अधिकारी भी खाली समय में उन्हें सार्वजनिक ग्रंथालय में जाकर बैठने की अनुमति दे देते थे। यह अपमानजनक परिस्थिति मानों कम ही थी, कि एक भंयकर घटना से उनके प्राण ही विपत्ति में पड़ गए। अम्बेडकर जिस पारसी आवास-गृह में रहते थे, वहां एक दिन क्रोध से आगबबूला पारसियों का एक झुंड हाथ में लाठियां लेकर आ पहुंचा। उस संतप्त झुंड के एक व्यक्ति ने उनसे पूछा, 'तुम कौन हो?' तुरन्त अम्बेडकर ने उत्तर दिया, 'मैं हिन्दू हूं।' उस पर उस व्यक्ति ने कहा, 'तुम कौन हो यह हम जानते हैं। तुमने हमारे समाज के वसतिगृह को भ्रष्ट किया है। तुम इसी समय यहां से बाहर जाओ।' अम्बेडकर ने अपनी सारी शक्ति इक्कट्ठा करके उनसे कहा, 'आठ घण्टे बाद मैं यहां से चला जाऊंगा' वे दिन ताऊन के थे। महाराज मैसूर जाने की जल्दी में होंगे। उन्होंने इस संबंध में दीवान से मिलने के लिए अम्बेडकर से कहा। दीवान ने इस मामले पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। नगर में कोई भी हिन्दू या मुस्लिम अम्बेडकर को आश्रय देने के लिए तैयार नहीं था। आखिर भूख और प्यास से व्याकुल अम्बेडकर एक पेड़ के तले बैठकर फफककर रो पड़े।[3] ऊपर आसमान और नीचे जमीन, यही उनका सहारा था। उस सचिवालय के सुशिक्षित मूढ़ों की अपेक्षा ज्ञान और विचार से अनेक गुना श्रेष्ठ उस पंडितवर को मालूम हो चुका था कि अस्पृश्य कितना भी विद्वान और अर्हता-प्राप्त क्यों न हो, अस्पृश्य ही रहता है। स्पृश्य हिन्दुओं की अमानुषी रूढ़ियों, उनका अज्ञान और उनके निर्दय आचरणों की कठोरता कम नहीं हो रही है, यह देखकर उन्हें बहुत अफसोस हुआ।

वे उद्विग्न मन:स्थिति में बम्बई वापस लौटे। गुरुवर केलुसकर ने महाराज को पत्र लिखकर कुछ प्रयास किए। लेकिन उनका कुछ असर नहीं पड़ा। उस समय सयाजीराव महाराज के अग्रज आनंदराव गायकवाड़ का देहावसान हुआ था। महाराज दिसम्बर के अन्त में मैसूर से बम्बई आ गए। वे फरवरी 1918 तक वहीं ठहरे। दीवान मनुभाई ने इस मामले में कुछ भी नहीं किया, यह बड़ी दु:खद घटना है। केलुसकर की प्रार्थना के अनुसार बड़ौदा के एक प्राध्यापक ने अम्बेडकर को अपने घर में पेइंग गेस्ट के रूप में रखना स्वीकार किया; किन्तु उनकी पत्नी के सामने उस प्राध्यापक महोदय की कुछ नहीं चलती थी। अम्बेडकर फिर बड़ौदा वापस गए। रेलगाड़ी से उतरते ही उन्हें उस प्राध्यापक महोदय की चिट्ठी प्राप्त हुई। अम्बेडकर को उनके घर रखने के

लिए उस प्राध्यापक महोदय की पत्नी का विरोध था, इस आशय की वह चिट्ठी थी। परिणामत: बड़ौदा की नौकरी को हमेशा के लिए राम-राम कहकर अम्बेडकर बम्बई वापस लौटे। इतने में उनकी विमाता का देहावसान हुआ। उसके अन्त्येष्टि संस्कार अम्बेडकर ने यथोचित रीति से पूरे किए। विमाता के झगड़ालू और घमंडी स्वभाव से उनकी अन्य अम्बेडकर परिवार के साथ कभी नहीं बनी।

मुस्लिमों का अलग राजनीतिक अस्तित्व स्वीकार करने वाली कांग्रेस को अब अस्पृश्य लोगों के अस्तित्व की याद आ गयी। अब तक राजनीतिक आंदोलन में निमग्न होने से उस वर्ग की ओर उसका ध्यान नहीं गया था। लेकिन इस समय उनके मन में अस्पृश्यों के प्रति प्रेम भाव पैदा हुआ। उसका कारण यह था कि उसे कांग्रेस-लीग करार का अस्पृश्य वर्ग का समर्थन प्राप्त कराना था। नवम्बर, 1917 में कांग्रेस-लीग करार का विचार-विमर्श करने के लिए बम्बई में अस्पृश्यों की एक परिषद् सर नारायण चंदावरकर की अध्यक्षता में संपन्न हुई । परिषद में एक प्रस्ताव के द्वारा यह मांग की गयी कि अस्पृश्यों को अपने प्रतिनिधि जनसंख्या के अनुपात में चुनने का अधिकार मिले। दूसरे प्रस्ताव से कांग्रेस-लीग करार को स्वीकृति देकर राष्ट्रीय सभा को ऐसा सूचित किया गया कि अस्पृश्यों पर होने वाले अन्याय दूर करने के लिए, स्पृश्य हिन्दुओं पर दबाव डालने का प्रस्ताव कांग्रेस पारित करे। इस तरह कांग्रेस-लीग करार को अस्पृश्यों का समर्थन प्राप्त कर थोड़ ही दिनों में उस आदान-प्रदान में कांग्रेस ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में अस्पृश्यों के लिए जिस प्रकार का प्रस्ताव आवश्यक था, प्रस्तुत कर दिया।

उसी समय बम्बई में अस्पृश्यों की दूसरी एक परिषद् संपन्न हुई। उस परिषद् ने एक प्रस्ताव द्वारा अस्पृश्य लोगों के हाथ में सत्ता देने के लिए अपना विरोध दर्शाया। दूसरे प्रस्ताव के द्वारा यह मांग की गई कि अस्पृश्यों को खुद के प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया जाए। अम्बेडकर ने उपर्युक्त दोनों परिषदों में हिस्सा नहीं लिया। प्रथम परिषद् के समय तो वे शोक में ही थे। दूसरी बात यह कि कांग्रेस द्वारा प्रयोजित परिषद् में भाग लेने की उनकी इच्छा भी नहीं थी। उन्हें कांग्रेस-लीग योजना भी स्वीकार नहीं थी। उनके मतानुसार यह योजना सदोष थी क्योंकि कार्यकारिणी पर विधानसभा का आधिपत्य रखने की मांग उस योजना में नहीं की गयी थी। अम्बेडकर का उस कांग्रेस-लीग योजना पर यह आक्षेप था कि उस योजना के अनुसार कार्यकारिणी[4] विधानसभा के प्रति उत्तरदायी नहीं थीं और कार्यकारिणी और विधानसभा को विभिन्न अधिकार शक्तियों से आदेश प्राप्त होने वाले थे।

मुस्लिमों का अलग राजनीतिक अस्तित्व स्वीकार करने वाली कांग्रेस को अब अस्पृश्य लोगों के अस्तित्व की याद आ गयी। अब तक राजनीतिक आंदोलन में निमग्न होने से उस वर्ग की ओर उसका ध्यान नहीं गया था। लेकिन इस समय उनके मन में अस्पृश्यों के प्रति प्रेम भाव पैदा हुआ।

कांग्रेस के उपरिल्लिखित कलकत्ता प्रस्ताव के तीन महीनों बाद अस्पृश्यों की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण घटना हुई। 19 मार्च 1918 को बम्बई में अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण परिषद् बुलाई गयी। उस सभा की अध्यक्षता का भार बड़ौदा नरेश श्री सयाजीराव गायकवाड जैसे महान व्यक्ति पर सौंपा गया। उस परिषद् को विट्ठलभाई पटेल, बै. मुकुंदराव जयकर, बाबू बिपिनचंद्र पाल जैसे ख्यातनाम नेता उपस्थित थे। कोल्हापुर के डॉ. कुर्तकोटी, द्वारिका के शंकराचार्य, रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी महानुभावों के संदेश उस परिषद् को मिले थे। स्वागत समिति के अध्यक्ष सर नारायण चंदावरकर ने कहा, 'यह परिषद् हमने अपने देश बांधवों की सदसद्विवेक बुद्धि को आवाहन करने के लिए, उनका दिल और दिमाग जागृत करने के लिए बुलायी है। सभी भारतवासियों से अस्पृश्यता निर्मूलन की प्रार्थना करने के लिए यह परिषद् आयोजित की गई है।' परिषद् के अध्यक्ष बड़ौदा नरेश ने कहा कि, 'सामाजिक नव-निर्माण तथा विज्ञाननिष्ठ ज्ञान के सामने अज्ञानमूलक गलतफहमियां और जात्याभिमान स्थायी नहीं रह सकते। अस्पृश्यता मनुष्य-निर्मित है, देव-निर्मित नहीं।' अस्पृश्यों के संभवनीय धर्मांतरण से उद्भूत होने वाले खतरे को सूचित करते हुए उन्होंने आगे कहा, 'हमें अपने धर्म में व्यावहारिक सुधार कर अस्पृश्यों की समस्या हल करनी चाहिए।[5]

परिषद् के दूसरे दिन लोकमान्य तिलक, दादासाहब खापर्डे और ठक्कर बाप्पा उपस्थित थे। उस समय एक प्रस्ताव पर अपने विचार प्रकट करते हुए लोकमान्य ने कहा, 'अस्पृश्य वर्ग की समस्या राजनीति या सामाजिक दृष्टि से तुरन्त हल कर लेनी चाहिए और वह हल हो सकती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन मुख्य वर्गों को जो अधिकार हैं, वे शूद्र वर्गों को भी है। तथापि शूद्र वैदिक मंत्रोच्चार न करें। प्रत्यक्ष ईश्वर अगर अस्पृश्यता का पालन करने लगेगा तो मैं उस ईश्वर को ईश्वर नहीं कहूंगा। मैं इस बात से इंकार नहीं करता कि पुराने जमाने में ब्राह्मणों ने यह रूढ़ि पैदा की।'

परिषद् के अन्त में समस्त नेताओं के हस्ताक्षर से युक्त एक घोषणा-पत्र जारी किया गया। उस पर हस्ताक्षर करने वाले नेता को यह प्रतिज्ञा करनी थी कि वह अपने वैयक्तिक दैनंदिन आचरण में अस्पृश्यता का पालन नहीं करेगा। लोकमान्य तिलक ने उस घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किए। यह कहा जाता है कि अपने अनुयायियों के आग्रह की वजह से उन्होंने ऐसा किया। लोकमान्य ने ईश्वर को तो कोसा, परन्तु अपने अनुयायियों के सामने विवश हो गए।[6] इस परिषद् के सूत्रधार कर्मवीर शिन्दे थे।

अम्बेडकर ने इस परिषद् में भाग नहीं लिया क्योंकि एक तो वे मितभाषी थे और दूसरे, अस्पृश्यों के उद्धारार्थ सवर्ण हिन्दुओं द्वारा शुरू किए गए इस आंदोलन के प्रति वे उदासीन और सशंकित थे। इस आन्दोलन के वे तत्त्वत: लेकिन मूलत: ही विरोधी थे। अपनी शक्ति और बुद्धिमत्ता का उपयोग करने का मौका कब और कैसे आएगा, इसका वे इंतजार कर रहे थे। उस कार्य के लिए अपने जीवन को निर्वाह स्वतंत्रता, अर्हंता और प्रतिष्ठा कैसे प्राप्त होगी, इस चिंता में वे मग्न थे। वैसा स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने के लिए उनको सक्षम बनाने वाला पेशा वकालत के अतिरिक्त और कोई दिखाई नहीं पड़ा। वकालत करके स्वतंत्र जिन्दगी बिताना आसान रहेगा और इससे लोगों का ध्यान भी आकृष्ट किया जा सकेगा। ऐसा उन्हें भरोसा था। इसलिए ग्रेज इन विश्वविद्यालय में अपनी बैरिस्टरी का अधूरा रह गया अध्ययन पूरा करने की ओर उनका मन लग गया था। उस दृष्टि से खुद का मार्ग ढूंढने के लिए उनके प्रयास निरन्तर जारी थे। उनके मित्र नवल भथेना के यत्न से उन्हें दो छात्रों की ट्यूशन लेने का मौका मिला। उन छात्रों को पढ़ाते समय ही उन्होंने स्टॉक्स एण्ड शेअर्स व्यवसाय में काम करने वाले लोगों को सलाह देने वाली एक कंपनी शुरू की। आमदनी अच्छी होने की संभावना दीख पड़ी। लेकिन वह कंपनी एक महार की है, यह मालूम पड़ते ही उनसे सलाह लेने आने वाले ग्राहकों की संख्या घटने लगी। आखिर कंपनी की सलाह 'ठंडी' पड़कर उस कंपनी को ताला लगाना पड़ा। उसके बाद एक अमीर व्यक्ति के पत्राचार और हिसाब-किताब की देखरेख करने का दूसरा एक काम उन्होंने स्वीकार लिया।

इस स्थिति में भी उन्होंने अपने बुद्धि-वैभव से जगत को जीतने का अपना निश्चय नहीं छोड़ा। उन्होंने तत्त्ववेत्ता बट्रांन्ड् रसेल के 'सामाजिक पुनर्रचना के तत्व' ग्रंथ पर 'जर्नल ऑफ दि इंडियन इकॉनॉमिक सोसाइटी' की पत्रिका में एक समीक्षात्मक लेख लिखा। अम्बेडकर ने उस ग्रंथ का संग्राम-गाथा के रूप में वर्णन करते हुए कहा कि, 'रसेल का यह कहना उचित है कि युद्ध का निर्मूलन केवल बुद्धि के भार पर आह्वान करके नहीं हो सकता। बल्कि युद्ध-प्रवृत्ति का विरोध करने वाला मनोविकारों तथा जीवन की ओर देखने वाली विधायक प्रवृत्तियों के संवर्धन से हो सकता है।'

इस स्थिति में भी उन्होंने अपने बुद्धि-वैभव से जगत को जीतने का अपना निश्चय नहीं छोड़ा। उन्होंने तत्त्ववेत्ता बट्रांन्ड् रसेल के 'सामाजिक पुनर्रचना के तत्व' ग्रंथ पर 'जर्नल ऑफ दि इंडियन इकॉनॉमिक सोसाइटी' की पत्रिका में एक समीक्षात्मक लेख लिखा। अम्बेडकर ने उस ग्रंथ का संग्राम-गाथा के रूप में वर्णन करते हुए कहा कि, 'रसेल का यह कहना उचित है कि युद्ध का निर्मूलन केवल बुद्धि के भार पर आह्वान करके नहीं हो सकता। बल्कि युद्ध-प्रवृत्ति का विरोध करने वाला मनोविकारों तथा जीवन की ओर देखने वाली विधायक प्रवृत्तियों के संवर्धन से हो सकता है।' रसेल युद्ध विरोधी थे लेकिन शांतिपथवादी नहीं। 'क्रियाशीलता से उन्नति होती है, निश्चलता से विनाश। शक्ति का मतलब है उत्साह और उसका उपयोग विधायक कार्य करने के लिए करना चाहिए। उसका इस्तेमाल संहार के लिए नहीं होना चाहिए।' अम्बेडकर ने भय व्यक्त किया कि भारतीय लोग रसेल के युद्ध विरोधी ग्रंथ में अपनी अहिंसा वृत्ति का समर्थन है, ऐसी भ्रामक कल्पना कर लेंगे। डॉ. अम्बेडकर ने यह अभिप्राय भी दिया कि सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक मूलभूत संवेदन को प्रमुखता देने से रसेल इस श्रेय और अभिनंदन के लिए पूर्ण पात्र हैं। सामाजिक घटकों के परस्पर योग्य सहयोग पर ही सामाजिक पुनर्रचना निर्भर है। यह समस्या अनेक समाजवेत्ताओं की निगाह से छूट गयी है, ऐसा भी डॉ. अम्बेडकर ने अपने विवेचन में कहा है।

इस अवधि में डॉ. अम्बेडकर ने अपना शोध-निबन्ध 'भारत की जातियां' पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। 'भारत की भूमि के छोटे पट्टे और तद्विषयक उपाय' (स्मॉल होल्डिंग्स इन इंडिया एण्ड देअर रेमिडीज) विषय पर एक प्रक्षोभपूर्ण ग्रंथ

लिखा। भूमि की समस्या पर उस समय के कतिपय विचारकों ने अपने विचार व्यक्ति किए थे। 'बड़ौदा समिति' के निष्कर्ष और उस विषय पर अधिकारी व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किए गए मतों पर अम्बेडकर ने इस ग्रंथ में कड़ी लेकिन विधायक समीक्षा की। अम्बेडकर के कहने का मतलब संक्षेप में यह था कि यद्यपि औद्योगिकरण के परिणाम भूमि-एकत्रीकरण पर नहीं हुए हैं, फिर भी औद्योगिकरण के कारण भूमि के बड़े टुकड़े बनने की सुविधा बढ़ जाएगी। यह बात निर्विवाद है कि जब तक लोगों को ऐसा लगेगा कि खेती करना अधिक लाभप्रद है, तब तक भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों का एकत्रीकरण नहीं हो सकेगा। अतएव औद्योगिकरण के पश्चात् भूमि का एकत्रीकरण होगा।[7] लेकिन इस बौद्धिक इंधन से अम्बेडकर की जीवन-नौका को पर्याप्त वाष्प न मिलने से वह आगे नहीं बढ़ रही थी। ये बौद्धिक ईंधन पूरी तरह निरर्थक सिद्ध हुए। अम्बेडकर का हृदय निराशा के झौके खा रहा था; इतने में उन्हें यह मालूम पड़ा कि सिड्नहैम कॉलेज में प्रोफेसरी की एक जगह रिक्त हुई है। बम्बई प्रान्त के भूतपूर्व राज्यपाल लॉर्ड सिड्नहैम के प्रयास से उन्होंने वह जगह हासिल की। राजनीतिक अर्थशास्त्र (पोलिटिकल इकॉनॉमी) विषय के प्रोफेसर के पद पर उनकी नियुक्ति की गयी। पुनश्च लंदन जाकर अपना कानून और अर्थशास्त्र का अधूरा रहा अध्ययन पूरा करने के लिए आवश्यक पैसा एकत्र करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने प्रोफेसर पद की उस अस्थायी नियुक्ति को स्वीकार किया।

सिड्नहैम कॉलेज के छात्रों ने प्रथमतः इस नवागत प्राध्यापक की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। यह महार प्राध्यापक हमें क्या पढ़ाएगा, ऐसा उन स्पृश्य और सभ्य समाज के युवकों को लगा। शायद उन्हें यह मालूम नहीं था कि व्यासंग, ज्ञाननिष्ठा और विद्यादान के बारे में लगन रखने वाला अध्यापक व्यक्ति सामने खड़ा होकर क्या कर सकता है? अम्बेडकर का गहरा अध्ययन, सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन करने की उनकी कुशलता और उनकी विचार प्रवर्तक शैली से विद्यार्थी उनकी ओर पूरी तरह से चकाचौंध हो गए। आधुनिक काल के अनुरूप सुन्दर पोशाक परिधान किए हुए उस युवा प्राध्यापक की आंखों का तेज, उसके गहन विचार तथा तलस्पर्शी पांडित्य का लाभ हमें भी हो, इस उद्देश्य से अन्य विद्यालय के छात्र भी उनकी सम्मति पाकर उनके व्याख्यानों के लिए उपस्थित रहने लगे। उस समय प्राध्यापक अम्बेडकर ने अपने व्याख्यानों की टिप्पणियों का जो प्रचंड संग्रह तैयार किया था, उससे अर्थशास्त्र पर एक महान ग्रंथ का निर्माण हो सकता था। यद्यपि प्राध्यापक के रूप में अम्बेडकर को सफलता मिली, फिर भी उनकी भर्त्सना रुक गयी थी, ऐसी गात बिलकुल नहीं थी। प्राध्यापक वर्ग के लिए रखे गए पानी के बर्तन को अम्बेडकर हाथ से स्पर्श न करें यह सावधानी वहां के गुजराती प्राध्यापकों ने बरती थी।

प्रोफेसरी का व्यवसाय अम्बेडकर के जीवन का अन्तिम साध्य तो नहीं था। वह तो एक साधन मात्र था। उनके मन में हमेशा यह चिंता लगी रही थी कि हर जगह और हर समय होने वाले अपमान के कारण अस्पृश्यता का मूल प्रश्न हाथ में लेना आवश्यक है। इस उद्देश्य से वे अस्पृश्य वर्ग के कार्यकर्ताओं के मन की धीरे-धीरे जांच-पड़ताल करने लगे। जिन्हें उस प्रश्न के बारे में सहानुभूति है ऐसे व्यक्तियों का दृष्टिकोण क्या है, यह समझने का वे प्रयास करने लगे। मृतकाय होकर पड़े हुए अस्पृश्य समाज की देह में और थोड़ी-थोड़ी धुगधुगी जिनमें है, उन कार्यकर्ताओं के जीवन में चेतना डालकर उन्हें अच्छी तरह से सजग करना उन्होंने प्रारंभ किया और इसी उद्देश्य से रोहिदास विद्यावर्तक समाज की ओर से क्रिकेट पटू बालू बाबाजी पालवनकर तथा पी. बालू और उनके भाई का सत्कार समारोह संपन्न कराने को प्रोत्साहन दिया। उस पी. बालू को दिये जाने वाले मानपत्र का मसौदा स्वयं अम्बेडकर ने तैयार किया।

'अन्याय से दबे इस निकृष्ट समाज में आप जैसे वीर पैदा होते हैं और केवल हिन्दू शाब्दिक संधि से जोड़े हुए हिन्दू समाज की निर्विकल्प हृदय से सेवा करते हैं, यह अपने समाज के अंगभूत तेज की तथा अपने सौजन्य की गवाही है।'

जिस भरतखंड ने अपने अ-न्यायिक जाति-बंधन से रोहिदास समाज का इतना नुकसान किया, उस भरतखंड का सम्मान बढ़ाने वाला वीर - पी. बालू का ऐसा वर्णन करके अम्बेडकर उस मानपत्र में कहते हैं-'अन्याय से दबे इस निकृष्ट समाज में आप जैसे वीर पैदा होते है और केवल हिन्दू शाब्दिक संधि से जोड़े हुए हिन्दू समाज की निर्विकल्प हृदय से सेवा करते हैं, यह अपने समाज के अंगभूत तेज की तथा अपने सौजन्य की गवाही है।' 'घमंडी, अनुदार तथा कृतघ्न वरिष्ठ हिन्दू समाज ने रोहिदास समाज पर लगे प्रतिबन्ध को दूर नहीं किया और पी. बालू को कर्णधार नहीं नियुक्त किया।' इस बारे में अम्बेडकर ने उस मानपत्र में खेद व्यक्त किया है।

यह समारोह सफल करने के लिए अम्बेडकर ने व्यक्तिगत काफी प्रयास किए। बालू बाबाजी पालवनकर तथा पी. बालू और उनके भाई की क्रिकेट-निपुणता पर

अम्बेडकर को अपने विद्यार्थी जीवन से ही नाज़ था। इस समारोह के बाद बम्बई नगर-परिषद् में अस्पृश्य वर्ग के लिए और एक जगह प्राप्त करने में अम्बेडकर को सफलता मिली। उस जगह पर उन्होंने पी. बालू की नियुक्ति करा ली। चमार की नियुक्ति होते ही महार समाज में खलबली मच गयी, असंतोष फैल गया। लेकिन अम्बेडकर ने उन महार मुखियों की गलतफ़हमी दूर की। उस समय पी. बालू और नारायणराव काजरोलकर के यहां अम्बेडकर प्रीतिभोज के लिए गए थे। इतनी आत्मीयता और मित्रता उन दोनों के बारे में उनके मन में पैठ गयी थी।

इस समय महाराष्ट्र में अछूतोद्धार के लिए लगन से कार्य करने वाले एक कर्तृत्वशाली, धैर्यशाली और उदार दिल वाले मराठी रियासतदार आगे आ गए। वे थे कोल्हापुर के छत्रपति साहू महाराज! उन्होंने अपनी कोल्हापुर रियासत में रहने वाले निम्न वर्ग को शिक्षा दिलाने, उनके धर्मसंबंधी मूर्खतापूर्ण अंधविश्वास मिटाने और ब्राह्मणों के प्रभुत्व से मुक्ति दिलाने के लिए निरन्तर प्रयास किए। अस्पृश्य वर्ग को उन्होंने अनेक प्रकार से बढ़ावा दिया। अपने वैयक्तिक तैनाती नौकर वर्ग में भी उन्होंने अस्पृश्यों की नियुक्ति की। उनकी अंबारी का महावत अस्पृश्य ही था। निम्नवर्ग में से जो थोड़े पढ़े-लिखे थे, उन्हें उन्होंने वकालत करने के लिए प्रमाणपत्र दिये। अस्पृश्य छात्रों के लिए आवास और भोजन की मुफ्त व्यवस्था कर उन्हें मुफ्त शिक्षा देने की सुविधा दी। अस्पृश्यों के साथ वे खुलेआम खाना खाते थे।

अम्बेडकर जब प्राध्यापक थे तब मांटेग्यू चेम्सफर्ड सुधार के अनुषंग से 'साउथ बरो कमेटी' भारत की विभिन्न जातियों से मताधिकार के बारे में पूछताछ कर रही थी। अस्पृश्य वर्ग की ओर से कर्मवीर शिंदे और अम्बेडकर की उस कमेटी के सामने गवाही हुई। अम्बेडकर ने उस कमेटी के सामने कौनसा मन प्रतिपादित किया होगा इसका अनुमान हम उस समय 'बम्बई टाइम्स' (Times of India) में उपनाम से प्रकाशित उनके एक पत्र से कर सकते हैं। 'टाइम्स' में प्रकाशित पत्र में अम्बेडकर ने लिखा था कि, 'स्वराज जैसा ब्राह्मणों का जन्मसिद्ध अधिकार है वैसा ही वह महारों का भी है, यह बात कोई भी स्वीकार करेगा। इसलिए, उच्च वर्ग के लोगों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे दलितों को शिक्षा देकर उनका मनोबल और सामाजिक स्तर ऊंचा करने की कोशिश करें। जब तक यह नहीं होगा तब तक भारत का स्वतंत्रता दिन बहुत दूर रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।'[8] इसी वर्ष दत्तोबा पवार नाम के एक व्यक्ति की मध्यस्थता से अम्बेडकर को राजर्षि साहू महाराज के साथ प्रत्यक्ष परिचय होने का संयोग प्राप्त हुआ। साहू महाराज ने अम्बेडकर को आर्थिक सहायता देकर एक पाक्षिक निकालने को कहा। अम्बेडकर ने 'मूकनायक' नामक पाक्षिक 31 जनवरी 1920 को जारी किया। उस दिन से अम्बेडकर ने उस मूक समाज का नायकत्व स्वीकार किया। पांडुरंग नंदराम भटकर को अम्बेडकर ने संपादक नियुक्त किया था। वे महार समाज के थे। वे पुणे के डी.सी. मिशन से मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। उनकी पत्नी ब्राह्मण समाज की थी। इसलिए उन्हें बहुत दुःख सहना पड़ा था। यद्यपि उस पाक्षिक पर अम्बेडकर का संपादक के रूप में नाम नहीं था; फिर भी बहुत से लोग यह जानते थे कि वह अम्बेडकर द्वारा जारी किए गए आंदोलन का मुखपत्र था। अस्पृश्यता निर्मूलन करने की दृष्टि से वह समय कितना प्रतिकूल और कठिन था इसकी कल्पना इस बात से ही स्पष्ट होती है कि 'केसरी' जैसे समाचारपत्र ने 'मूकनायक' के बारे में दो शब्द लिखना तो दूर रहा, पैसे लेकर उनका विज्ञापन छापने से भी इनकार कर दिया[9] जबकि उस समय तिलक विद्यमान थे।

'स्वराज जैसा ब्राह्मणों का जन्मसिद्ध अधिकार है वैसा ही वह महारों का भी है, यह बात कोई भी स्वीकार करेगा। इसलिए, उच्च वर्ग के लोगों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे दलितों को शिक्षा देकर उनका मनोबल और सामाजिक स्तर ऊंचा करने की कोशिश करें। जब तक यह नहीं होगा तब तक भारत का स्वतंत्रता दिन बहुत दूर रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।'

'मूकनायक' पाक्षिक की पहली प्रति में अम्बेडकर ने अपने पाक्षिक के उद्देश्य का समर्थन बहुत ही सुबोध, सरल किन्तु जोशीली और साफ भाषा में पाठकों के विचारार्थ प्रस्तुत किया। उन्होंने पहले ही अंक में लिखा कि, 'हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है, जो विषमता का मायका है। हिन्दू समाज एक मीनार है और एक-एक जाति एक-एक मंजिल। लेकिन यह ध्यान रखने की जरूरत है कि मीनार को कोई सीढ़ी नहीं है। एक मंज़िल से दूसरी मज़िल तक जाने के लिए कोई मार्ग नहीं है। जिस मंजिल पर जो पैदा हो, वह उसी मंज़िल पर मरे। तल मंज़िल का व्यक्ति, चाहे वह कितना भी लायक क्यों न हो, उसे ऊपर की मंजिल पर प्रवेश नहीं मिलता और ऊपर मंज़िल पर पैदा हुए व्यक्ति को, चाहे वह कितना भी नालायक क्यों न हो, नीचे ढकलने की किसी की हिम्मत नहीं होती। सचेतन के साथ-साथ

अचेतन वस्तुएं भी ईश्वर के रूप हैं, ऐसा कहने वाले स्वधर्मियों का अशौच मानते हैं। संप्रति ब्राह्मणों की महत्वाकांक्षा ज्ञान का संचय करने में है, प्रसार करने में नहीं। ब्राह्मणेतरों की अवनति का कारण सत्ता और ज्ञान का अभाव है और इसलिए ब्राह्मणेतर पिछड़ गए और उनकी उन्नति रुक गयी। युगों-युगों से चली आयी दासता, दरिद्रता से बहिष्कृत वर्ग की मुक्ति के लिए आकाश-पाताल एक करना होगा। उनकी आंखों में ज्ञान का काजल लगाकर उन्हें हीन परिस्थिति से अवगत कराना होगा।

एक अन्य लेख में अम्बेडकर कहते हैं, 'भारत के स्वतंत्र होने से सब कुछ साध्य होगा, ऐसी बात नहीं। भारत एक ऐसा राष्ट्र बनना चाहिए कि जिसमें नागरिक के धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार समान हों और हर एक को व्यक्ति विकास के लिए उचित अवसर प्राप्त हो। अंग्रेजी राज्य के खिलाफ उठाया गया एतराज ब्राह्मणों के मुंह में यदि एक गुना शोभायमान होता है; तो वही एतराज ब्राह्मणी राज्य के खिलाफ किसी बहिष्कृत व्यक्ति के उठाने पर हजार गुना शोभायमान होगा। यह नहीं दिखाई देता कि यह नीति अप्रस्तुत और अवास्तव है, ऐसा कहने वाला कोई पामर मिलेगा। अंग्रेजी राज्य में जिनकी बात नहीं सही जाती उनकी लात खानी होगी। इसलिए ऐसा स्वराज्य दो जिसमें थोड़ा बहुत हमारा भी राज्य हो।'

उस समय अम्बेडकर प्राध्यापक थे। हिन्दू समाज पर खुली चढ़ाई करने के लिए अभी वे तैयार नहीं थे। साधन और सामर्थ्य भी उन्हें प्राप्त करने थे। कोल्हापुर के साहू महाराज के साथ अम्बेडकर के संबंध अब सदृढ़ होने लगे थे। उस रियासत के माणगांव नामक ग्राम में रियासत के अस्पृश्यों की पहली परिषद् मार्च में सम्पन्न हुई। साहू महाराज उस समय वहां अपने ताम-झाम के साथ उपस्थित थे। 'मेरे राज्य के बहिष्कृत प्रजाजनों! तुमने अपना सच्चा नेता खोजकर निकाला, इसलिए मैं तुम्हारा हृदय से अभिनंदन करता हूं। मेरा विश्वास है कि डॉ. अम्बेडकर तुम्हारा उद्धार किए बिना नहीं रहेंगे। इतना ही नहीं, एक समय ऐसा आएगा कि वे समस्त हिन्दुस्तान के नेता होंगे। मेरी अंतरात्मा मुझे ऐसा कहती है।'[10] इस परिषद् के समाप्त होने के बाद साहू महाराज, उनके सरदारों; अन्य सम्मानित व्यक्तियों आदि के साथ अम्बेडकर और अन्य अस्पृश्य कार्यकर्ताओं का प्रीतिभोज का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

'भारत के स्वतंत्र होने से सब कुछ साध्य होगा, ऐसी बात नहीं। भारत एक ऐसा राष्ट्र बनना चाहिए कि जिसमें नागरिक के धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार समान हों और हर एक को व्यक्ति विकास के लिए उचित अवसर प्राप्त हो। अंग्रेजी राज्य के खिलाफ उठाया गया एतराज ब्राह्मणों के मुंह में यदि एक गुना शोभायमान होता है; तो वही एतराज ब्राह्मणी राज्य के खिलाफ किसी बहिष्कृत व्यक्ति के उठाने पर हजार गुना शोभायमान होगा। यह नहीं दिखाई देता कि यह नीति अप्रस्तुत और अवास्तव है, ऐसा कहने वाला कोई पामर मिलेगा। अंग्रेजी राज्य में जिनकी बात नहीं सही जाती उनकी लात खानी होगी। इसलिए ऐसा स्वराज्य दो जिसमें थोड़ा बहुत हमारा भी राज्य हो।'

इस प्रकार अस्पृश्यों की छोटी-छोटी परिषदें संपन्न कराते हुए उन्होंने मई, 1920 के अंत में नागपुर में, समाजक्रांति के महान नेता छत्रपति साहू महाराज की अध्यक्षता में एक अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद् बुलायी। कुछ प्रतिनिधियों के साथ अम्बेडकर नागपुर गए। डी.सी मिशन के कर्मवीर शिन्दे ने कुछ दिन पहले सरकार को एक ऐसा निवेदन प्रस्तुत किया था कि अस्पृश्यों के प्रतिनिधि विधानमंडल स्वयं चुनें। राज्यपाल या अस्पृश्यों की संस्थाएं उन्हें न चुनें। विषय-नियामक समिति की बैठक के समय अम्बेडकर और शिन्दे के अगाड़ी के दो नेता गणेश अ. गवई और बेलगांव के पापन्ना के बीच हंगामा हो गया। गवई ने ऐसा षड्यंत्र रचा कि अम्बेडकर विषय-नियामक समिति के अध्यक्ष हो। लेकिन यह षड्यंत्र अम्बेडकर गुट के लोगों ने पापन्ना को अध्यक्ष करके कुचल दिया। अम्बेडकर ने अध्यक्ष महोदय की सम्मति से एक बड़ा परिणामकारी भाषण कर शिन्दे के डी.सी. मिशन रुख का निषेध किया और शिन्दे के मत के अनुसार सरकार फैसला न करे इस तरह का प्रस्ताव परिषद् की ओर से पारित करा लिया।[11]

कुछ महान पुरुषों के जीवन में कभी-कभी उनके हाथों कोई ऐसा प्रमाद होता है कि वे अपने कार्य पर गलतफहमियां तथा दोषों के बादल घिरा लेते हैं। कर्मवीर

शिन्दे का कार्य महान था और त्याग भी बड़ा था; लेकिन उनके अनुचित रुख के कारण वे अस्पृश्य नेताओं की सहानुभूति से व्यर्थ वंचित हुए।

उपर्युक्त परिषद् में अम्बेडकर में नेतृत्व के लिए आवश्यक समयज्ञता, वाक्पटुता आदि गुण दिखाई पड़े। सार्वजनिक जीवन में अम्बेडकर की यह पहली जीत थी। 'मूकनायक' ने अपने भावी महान कार्य की एक झलक दी थी।

इस परिषद् के बाद महारों की अठारह उपजातियों के नेताओं का अम्बेडकर ने महत् प्रयास से प्रीतिभोज संपन्न कराया। तमाम अस्पृश्य जाति के लोगों द्वारा इकट्ठा होकर प्रीतिभोज करने का दिन अभी बहुत दूर था। अस्पृश्यों की एक जाति दूसरी जाति को निम्नस्तर की मानती थी।

यद्यपि प्रो. अम्बेडकर को काफी मासिक वेतन मिलता था, फिर भी वे मजदूर-विभाग में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट चाल के दो कमरों में ही रहते थे। पैसे का व्यय वे हाथ समेटकर करते थे। वे सादगी और मितव्ययिता से रहते थे। पत्नी रमाबाई को परिवार के लिए वेतन का कुछ हिस्सा देकर शेष रकम की वे बचत करते थे। रमाबाई का स्वभाव मितभाषी, दृढ़निश्चयी और स्वाभिमानी था। कर्तव्यनिष्ठ, स्वसुखत्यागी, भीतर ही भीतर जलकर आत्मयज्ञ करने वाली यह आर्य स्त्री ईश्वरपरायण थी। उनके व्रतवैकल्य और उपासना में कोई हस्तक्षेप करता तो वह उनसे सहा नहीं जाता था। उन्होंने अपने वैवाहिक जीवन का प्रारंभिक हिस्सा बहुत परिश्रम और तकलीफों में व्यतीत किया। उस कठिन परिस्थिति मे मन:शांति और घर की एकता अबाधित रखने में उन्हें बहुत कष्ट सहने पड़े। पति की अनुपस्थिति में अपनी विधवा भावज और उसके बेटे को उन्होंने दूर नहीं रखा। उन्होंने उनका अच्छी तरह से पालन-पोषण किया।

पति विदेश में होते समय उस साध्वी स्त्री ने अत्यंत तकलीफ सहकर अपनी जिन्दगी व्यतीत की। लेकिन कभी भी भुनभुन नहीं की या कभी अपने मुंह से कठोर शब्द भी नहीं निकाला। अपने पति की दीर्घायु और उनकी उन्नति के लिए रमाबाई ईश्वर से प्रार्थना किया करती थी। वे व्रतस्थ रहती थीं। अम्बेडकर जब अमरीका चले गए तब वे गर्भवती थी। उनके एक बेटा पैदा हुआ। उसका नाम उन्होंने गंगाधर रखा। वह बचपन में ही चल बसा। उनका इकलौता एक बेटा यशवंत जिसकी तबीयत अच्छी नहीं रहती थी, उन्हें चिंता लगी रहती थी। फिर भी बहुत मितव्ययिता से परिवार का बोझ ढोते हुए पति के अध्ययन में कभी व्याघात आ जायेगा, ऐसी एक भी बात उन्होंने नहीं की। वे हमेशा इतनी सतर्क रहती थी। पति के प्रयास से वह कुछ पढ़ी-लिखी बन गयी थीं। सचमुच, महान हिन्दू पुरुष के जीवन में उसकी अर्धांगिनी का उसकी सफलता में कितना हिस्सा होता है इसका हिसाब नहीं किया जा सकता। तथापि, इतना सही है कि वे नारियां आदर्श आर्य नारी की साक्षात् अवतार थीं। तिलक, गांधीजी और सावरकर-प्रत्येक महानुभाव की पत्नी जैसी साध्वी थी, वैसी ही डॉ. अम्बेडकर की पत्नी भी साध्वी थी।

अध्ययन पूर्ति के लिए लंदन जाने की अम्बेडकर की इच्छा बड़ी बलवती थी। मासिक आय से प्रो. अम्बेडकर ने काफी बचत की थी। अपने मित्र नवल भथेना से उन्होंने पांच हजार रूपए का कर्ज प्रामिसरी नोट पर ले लिया था। थोड़ी आर्थिक मदद उन्होंने कोल्हापुर के साहू महाराज से प्राप्त की थी। इस तरह पूंजी जमाकर प्रो. अम्बेडकर ने शिक्षा पूरी करने के लिए लंदन जाने की तैयारी की। उन्होंने सिड्नहैम कॉलेज के प्राध्यापक पद का इस्तीफा दिया और जुलाई के अंतिम सप्ताह में वे लंदन पहुंचे। उनकी साध्वी पत्नी ने पुनश्च दु:ख और दरिद्रता का मुकाबला करते हुए अपने नन्हे-मुन्ने यशवंत का, भावज का और उसके बेटे मुकुंद का पालन-पोषण करने का पक्का इरादा कर लिया।

इसी बीच बड़ौदा सरकार के अधिकारियों ने अम्बेडकर की शिक्षा के लिए जो व्यय हुआ, वापस मिलने के लिए उनके पीछे निष्ठुरता से तकाजा लगाया था। उन्होंने इस संबंध में सिड्नहैम कॉलेज के प्राचार्य को भी लिखा। बम्बई के सरकारी शिक्षणाधिकारियों को भी बताया। विख्यात मजदूर नेता नारायण मल्हार जोशी से इस संबंध में मध्यस्थता करने के लिए उन्होंने अनुरोध किया। कुछ लोगों ने यह बताया कि अम्बेडकर अपना पूरा पता नहीं बताते, तो कुछ लोगों ने बताया कि समय मिलते ही ऋण वापस करने का अम्बेडकर का इरादा है। इस पूरी समस्या में एक बात दिखाई देती है कि महाराज को उस समस्या के बारे में बड़ौदा के दीवान ने बहुत समय तक अज्ञान में ही रखा था। आखिर वह समस्या महाराज तक पहुंच गयी। उन्होंने उस समस्या पर ऐसा अभिप्राय दिया कि वह रकम विद्याध्ययन के लिए ही व्यतीत हुई है। इसलिए वसूली का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी बड़ौदा के सचिवालय के जुल्मी अधिकारियों ने अम्बेडकर का छल नहीं रोका। उनका कहना था कि वह छात्रवृत्ति नहीं थी, कर्ज था। अम्बेडकर को न्यायालय में खीचने के लिए वे अधीर हुए थे। तथापि रियासत के उन अधिकारियों के हाथ ब्रिटिश प्रदेश में निवास करने वाले अम्बेडकर तक पहुंच नहीं सकते थे। इसलिए व्यर्थ चुलबुल कर वे थक गए थे। अन्त में एक बार बड़ौदा नरेश के गुस्से से घबराकर 1932 में मंत्रिमंडल की एक बैठक में उन्होंने इस समस्या को निपटाया।■

(पॉपुलर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित धनंजय कीर की लिखी पुस्तक डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जीवन चरित से साभार)

(शेष अगले अंक में)

कविता

असमय मुरझाई कली

■ संध्या पेडणेकर

तुम कहां
वह कहां
कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुजल की–
तुम एक नाजुक खिलती कली हो
वह मरहट्टा किसान का बेटा
हल ढोता
गाय भैंस चराता–
गोबर उठाता
कुत्ते के पिल्लों संग
उछलता कूदता
बछड़े के संग गाय दूध पीता
ठण्ड के दिनों में धूप में ले जाकर
भैंस के बदन की जुएं चुनता
मध्य रात्रि का करुण स्वर में मिमियाती
बकरी का प्रसव कराता
रात ही में गड्डा खोद कर
मरे मेमने को गाड़ देता
बैल की लाश पर धईं मार मार कर रोता
भजन गाते हुए
पियक्कड़ों की तरह झूमता
ठठाकर हंसता तो
बच्चे सहम जाते
कहां तुम
कहां वह
न पहनने–ओढ़ने का शऊर
न खाने पीने का शऊर
छोटे खानदान का, और
जमीन के छोटे टुकड़े
और दो चार ढोरों के अलावा–
उसके हिस्से
दो बेवा बुवाएं
दादी दादा–
और एक
तलाकशुदा बहन भी है
मां बाप के साथ उसे–
इन सबकी खातिर में
उम्र गुजारनी है
प्यार करने का उसे कोई हक नहीं है
दो जून की रोटी का जुगाड़ भर कर लें
और
दिन रात खटने वाली–
मेहरारू ढूंढ ले
इतना उसके लिए काफी है
क्या है वह तुम्हारे आगे...
पलकों पर पली
मां बाप की लाडली–
दुनियादारी समझ न सकी
मां बाप प्यारे थे लेकिन–
उनकी दी सीख निगल न सकी
गुलाब की पंखुडियों सी उसकी
जिस नाजुक त्वचा पर
मां बाप को नाज था
आक्रोश में उसने वही जला डाली
कुछ इस कदर
कि पलकें उसकी दोनों जुड़ गयी और
जिसके लिए उसने यह लड़ाई छेड़ी थी
उसे देखने को भी
उसकी नज़र तरस गयी
उच्च कुल में पैदा हुई उसकी
नंगी, कटीफटी और फिर से सिली–
देह को
किस निम्न जाति के मेहतर ने
पुआल भरे ठेले पर लादा
यह पूछने की
मां बाप की हिम्मत नहीं हुई–
अर्थी के साथ चले उसके
बाप और भाई को
पगलाए मरहट्टे ने जब
रोक कर पूछा
इससे भला क्या एक ब्राह्मणी का
मरहट्टे से ब्याज भला न होता?
सहसा वे कुछ बोल न सके
उसके आंसुओं
और अपनी हताशा ने
उनके अहसासों के साथ
इनके अहंकार को भी
तार–तार कर दिया था ■

(सुश्री पेडणेकर, वरिष्ठ साहित्य कर्मी व कवयित्री हैं)

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

'बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय'

Collected Works of Babasaheb Dr. B.R. Ambedkar (CWBA)

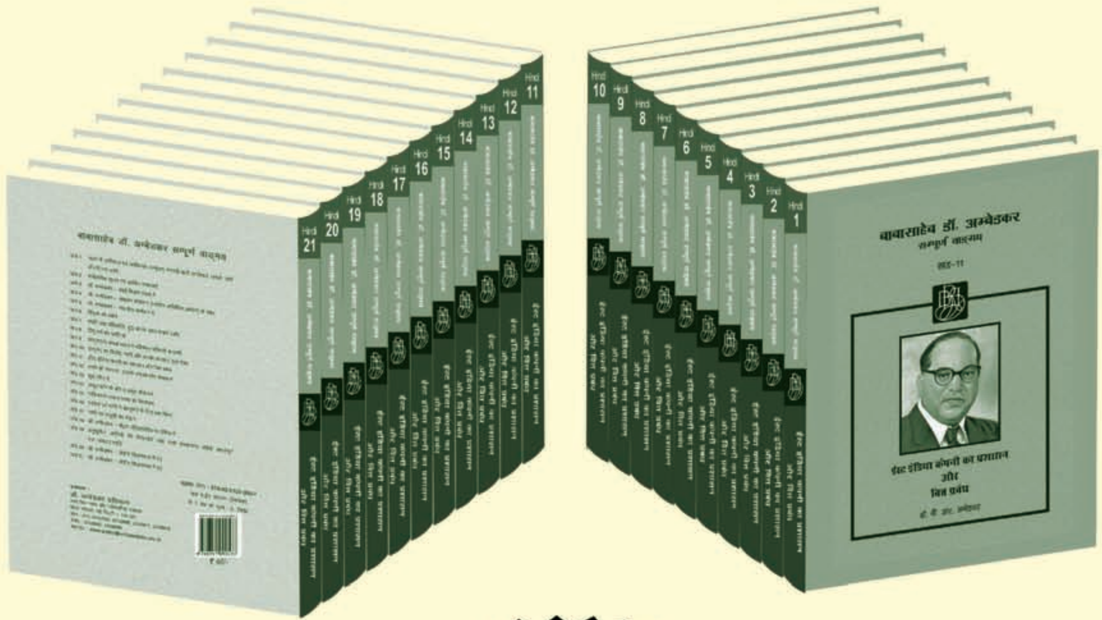

Offer Price
Rs. 671/-* Per set
(A Set of 21 Books)

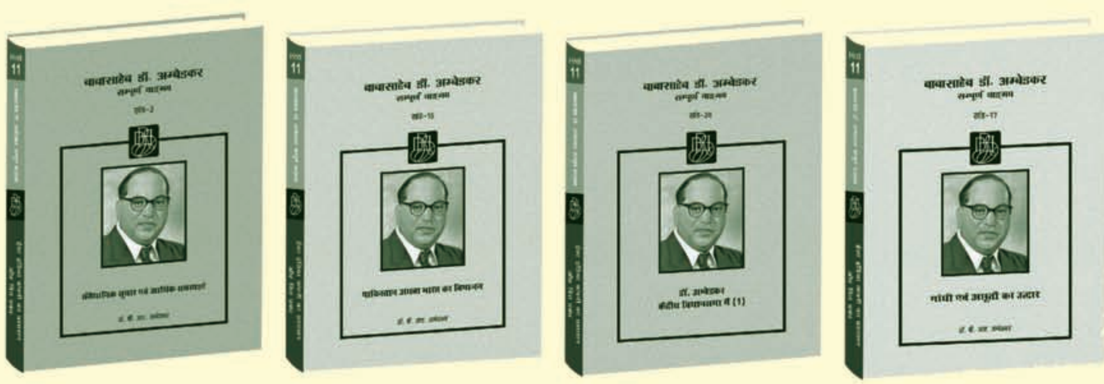

स्वयं पढ़े एवं दूसरों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

15, जनपथ, नई दिल्ली-110001, फोन नं. 011-23357625, 23320589, 23320571, 23320576, फैक्स: 011-23320582
Website: www.ambedkarfoundation.nic.in

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
Dr. Ambedkar Foundation
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार
Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India

15, जनपथ, नई दिल्ली-110001,
फोन नं. 011-23320588, 23320589, 23320571, 23320576,
फैक्स: 011-23320582
Website: www.ambedkarfoundation.nic.in

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

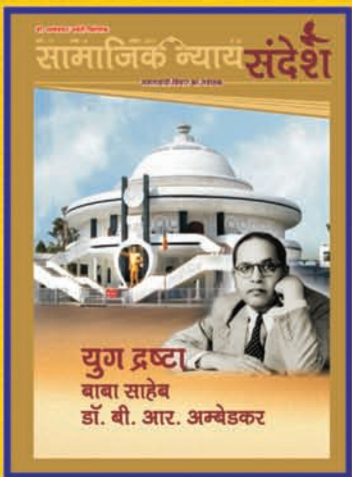

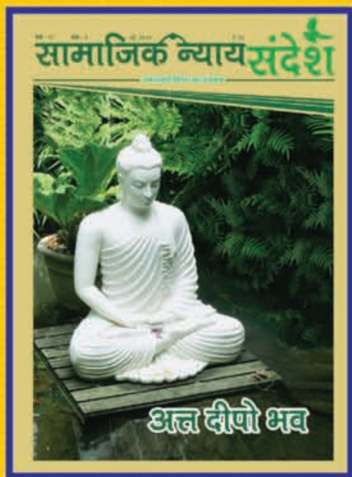

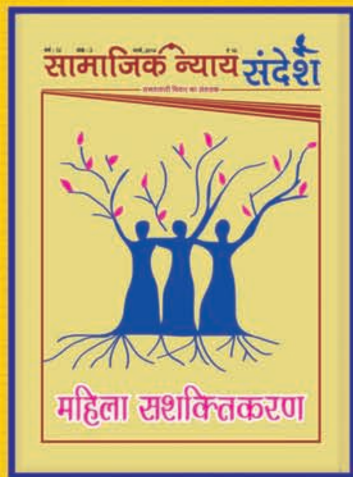

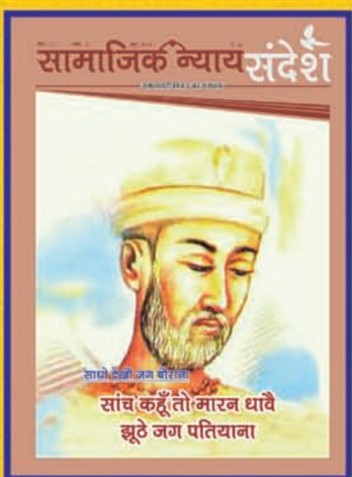

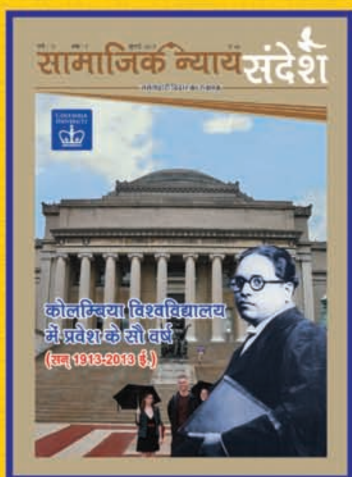

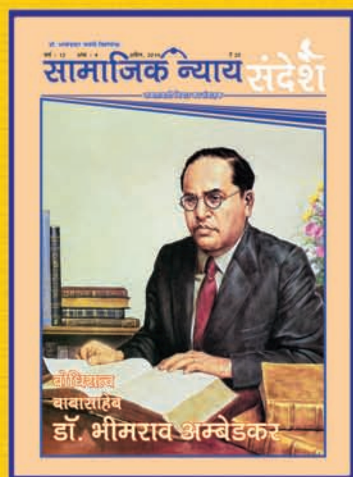

स्वयं पढ़े एवं दूसरों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

15, जनपथ, नई दिल्ली-110001, फोन नं. 011-23320588, 23320589, 23320571, 23320576, फैक्स: 011-23320582
Website: www.ambedkarfoundation.nic.in

सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका *'सामाजिक न्याय संदेश'* का प्रकाशन पुनः आरम्भ हो गया है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित, सशक्त एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के संदेश को आम नागरिकों तक पहुँचाने में सामाजिक न्याय संदेश की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'सामाजिक न्याय संदेश' देश के नागरिकों में मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जगाने के लिए समर्पित है।

'सामाजिक न्याय संदेश' बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों व उनके दर्शन तथा फाउन्डेशन के कार्यक्रमों एवं योजनाओं को आम नागरिकों तक पहुँचाने का काम बखूबी कर रहा है।

सामाजिक न्याय के कारवां को आगे बढ़ाने में इस पत्रिका से जुड़कर आप अपना योगदान दे सकते हैं। आज ही पाठक सदस्य बनिए, अपने मित्रों को भी सदस्य बनाईए, पाठक सदस्यता ग्रहण करने के लिए एक वर्ष के लिए रू. १००/-, दो वर्ष के लिए रू. १८०/-, तीन वर्ष के लिए रू. २५०/-, का डिमांड ड्राफ्ट, अथवा मनीऑर्डर जो **'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन'** के नाम देय हो, फाउन्डेशन के पते पर भेजें या फाउन्डेशन के कार्यालय में नकद जमा करें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे। पत्रिका को और बेहतर बनाने के लिए आपके अमूल्य सुझाव का भी हमेशा स्वागत रहेगा।

– सम्पादक

सामाजिक न्याय संदेश सदस्यता कूपन

मैं, डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का ग्राहक बनना चाहता /चाहती हूँ/
शुल्कः वार्षिक सदस्यता शुल्क रू. 100/-, **द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क** रू. 180/-, **त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क** रू. 250/-।
(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)
मनीऑर्डर/ डिमांड ड्राफ्ट नम्बर..दिनांक........................संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर 'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन' के नाम नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

....पिन ....

फोन/मोबाईल न.....................................ई.मेलः ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित निम्न पते पर भेजिए :

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन

15 जनपथ, नई दिल्ली-110 001 फोन न. 011-23320588, 23320589, 23357625

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा 4 सितम्बर 2014 को विज्ञान भवन में आयोजित 5वें डॉ. अम्बेडकर स्मृति व्याख्यान देते हुए राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी।

विज्ञान भवन में डॉ. अम्बेडकर स्मृति व्याख्यान के अवसर पर कार्यक्रम में शिरकत करते हुए मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री संजीव कुमार व अन्य।

RNI No. DELHIN/2002/9036

प्रकाशक व मुद्रक जी.के. द्विवेदी, द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के लिए इण्डिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली-110064 से मुद्रित तथा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित।
सम्पादक : सुधीर हिलसायन